दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९५ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २५ अंक नं० ३

आत्म-अनुभव

(राग–गौरी)

आतम अनुभव आवै जब निज, आतम अनुभव आवै,
और कछू न सुहावै, जब निज० ।टेक ॥
रस नीरस हो जात ततच्छिन, अच्छ विषय नहिं भावै ॥आतम० ॥
गोष्टी कथा कुतूहल विघटै, पुद्गलप्रीति नसावै ॥आतम० ॥
राग दोष जुग चपल पक्षजुत, मन पक्षी मर जावै ॥आतम० ॥
ज्ञानानंद सुधारस उमगै, घट अंतर न समावै ॥आतम० ॥
भागचंद ऐसे अनुभव के हाथ जोरी सिर नावै ॥आतम० ॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जुलाई १९६९ वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२९१) एक अंक २५ पैसा [प्र. अषाढ़ सं० २४९५

आत्मधर्म

आजीवन सदस्य योजना

आत्मधर्म मासिक पत्र के हजारों की संख्या में ग्राहक हैं। पत्र ज्यादा से ज्यादा विकसित बने और उसके स्थायी ग्राहकों को हरसाल वार्षिक शुल्क भेजने का कष्ट न हो, संस्था को भी व्यवस्था में सुविधा रहे। अतः ऐसा निर्णय किया गया है कि—१०१) रुपये लेकर 'आजीवन सदस्य' योजना चालू की जाये, एवं उन्हें 'आत्मधर्म' हर साल बिना वार्षिक शुल्क भेजा जाये। अतः जो सज्जन इस योजना से लाभ उठाना चाहें, वे निम्न पते पर १०१) रुपया भेजकर इस योजना में सहयोग प्रदान करें। यह योजना गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के 'आत्मधर्म' के लिये चालू की गई है।

पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर

दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आजीवन सदस्य

२२. श्रीमती द्रोपदीदेवी जैन, नजीवाबाद

२३. श्री टाया एण्ड संस, उदयपुर

२४. श्री एम.सी. तुरखिया, बम्बई

२५. श्री तरुणकुमार सुमतचन्दसा जैन खंडवा

२६. श्री गुलाबचंदजी कैलाशचन्दजी इंदौर

२७. श्री सुमेरकुमार जैन एंड कं. फुलेरा

***

१०१) के स्थायी सदस्य बनने वाले सज्जनों को फिर वार्षिक मूल्य नहीं देना पड़ता। आप भी स्थायी सदस्य बनकर धर्म प्रचार में सहयोगी बन सकते हैं।

—प्रकाशक

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

जुलाई : १९६९ ☆ प्र. अषाढ़, वीर नि०सं० २४९५, वर्ष २५ वाँ ☆ अंक : ३

सच्चे गुरु की प्रथम शिक्षा

सच्चे ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि आत्मा अपने दोष से ही बंधन में है। अपना दोष इतना ही है कि—

'इसने अन्य को अर्थात् शरीर, कुटुम्ब, धन, मकान, रागादि को अपना मान लिया है तथा अपने आत्मा को भूल गया है।' इसप्रकार की झूठी मान्यता ही सबसे बड़ा दोष है।

कोई कहे दोष तो अनेक हैं, एक ही क्यों कहते हो? तो भाई! अज्ञानियों के सर्व दोषों में 'झूठी मान्यता ही मूलभूत दोष है।' जब तक यह है, तब तक अनेक दोष उत्पन्न होते रहते हैं। पर जब यह आत्मा का सही स्वरूप समझकर झूठी मान्यता स्वयं छोड़ देता है, तब अज्ञानदशा के सब दोष छूट जाते हैं तथा उसके बाद पीछे रहनेवाले दोष भी क्रमशः छूटने लगते हैं।

अतः हमें झूठी मान्यता को दूर करने के लिये तत्त्वज्ञान का अभ्यास करना चाहिये। पर को अपना मानना मिथ्यात्व है, इसको सबसे बड़ा पाप कहा जाता है। आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी कहते हैं कि 'जिनधर्म में तो यह आम्नाय है कि पहले बड़ा पाप छुड़ाकर फिर छोटा पाप छुड़ाया जाता है। अतः मिथ्यात्व को सप्तव्यसन आदि से भी बड़ा पाप जानकर पहले छुड़ाया है।

अतः जो भव-भ्रमण से बचना चाहते हैं, वे मिथ्यात्व को अवश्य छोड़ें, क्योंकि जब तक इस मिथ्यात्व-दोष का त्याग नहीं किया जायेगा, तब तक क्रोध-मान-माया-लोभ, इन चार में से कोई न कोई भाव होता ही रहेगा।

देव-शास्त्र-गुरु

आचार्य समंतभद्र

(व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व)

लोकेषणा से दूर रहनेवाले स्वामी समंतभद्र का जीवनचरित्र एक तरह से अज्ञात ही है। जैनाचार्यों की यह विशेषता रही है कि महान कार्यों के करने के बाद भी उन्होंने अपने बार में कहीं कुछ नहीं लिखा है। जो कुछ थोड़ा बहुत प्राप्त है, वह पर्याप्त नहीं।

आप कदंब राजवंश के क्षत्रिय राजकुमार थे। आपके बाल्यकाल का नाम शांति वर्मा था। आपका जन्म दक्षिण भारत में कावेरी नदी के तट पर स्थित उरगपुर नामक नगर में हुआ था। आपका अस्तित्व विक्रम संवत् १३८ तक था।

आपके पारिवारिक जीवन के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। आपने अल्पवय में ही मुनि दीक्षा धारण कर ली थी। दिगम्बर जैन साधु होकर आपने घोर तपश्चरण किया और अगाध ज्ञान प्राप्त किया।

आप जैन सिद्धांत के तो अगाध मर्मज्ञ थे ही। साथ ही तर्क, न्याय, व्याकरण, छंद, अलंकार, काव्य और कोष के भी अद्वितीय पंडित थे। आपमें बेजोड़ वाद-शक्ति थी। आपने कई बार घूम-घूम कर कुवादियों का गर्व खंडित किया था। आप स्वयं लिखते हैं—

'वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम्'

'हे राजन्! मैं वाद के लिये सिंह की तरह विचरण कर रहा हूँ।'

आपके परवर्ती आचार्यों ने आपका स्मरण बड़े ही सम्मान के साथ किया है। आपकी आद्य स्तुतिकार के रूप में प्रसिद्धि है। आपने स्तोत्रसाहित्य को प्रौढ़ता प्रदान की है। आपकी स्तुतियों में बड़े-बड़े गंभीर न्याय भरे हुए हैं।

आपने आप्तमीमांसा, तत्त्वानुशासन, युक्त्यनुशासन, स्वयंभू स्तोत्र, जिनस्तुति शतक, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, प्राकृत व्याकरण, प्रमाण पदार्थ, कर्म प्राभृतटीका और गंधहस्ति महाभाष्य (अप्राप्य) नामक ग्रंथों की रचना की है।

प्रस्तुत अंश रत्नकरण्ड श्रावकाचार के प्रथम अध्याय के आधार पर लिखा गया है।

आधार—रत्नकरण्ड श्रावकाचार

देव की परिभाषा

५. आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥

६. क्षुत्पिपासाजरातंकजन्मान्तकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते॥

शास्त्र की परिभाषा

९. आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्य,-मदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत-सार्वं, शास्त्रं कापथ-धट्टनम्॥

गुरु की परिभाषा

१०. विषयाशावशातीतो, निरारंभोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥

देव-गुरु-शास्त्र

सुबोध— क्या भाई! इतने सुबह ही संन्यासी बने कहाँ जा रहे हो?

प्रबोध— पूजन करने जा रहा हूँ। आज चतुर्दशी है न! मैं तो प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को पूजन अवश्य करता हूँ।

सुबोध— क्यों जी! किसकी पूजन करते हो तुम?

प्रबोध— देव, शास्त्र और गुरु की पूजन करता हूँ।

सुबोध— किस देवता की?

प्रबोध— जैनधर्म में व्यक्ति की मुख्यता नहीं है। वह व्यक्ति के स्थान पर गुणों की पूजा में विश्वास रखता है।

सुबोध— अच्छा तो देव में कौन से गुण होने चाहिये?

प्रबोध— सच्चा देव वही है जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो। जो किसी से न तो राग ही करता हो और न द्वेष, वही वीतरागी कहलाता है। वीतरागी के जन्म-मरण आदि १८ दोष नहीं होते, उसे भूख-प्यास भी नहीं लगती, समझ लो उसने समस्त इच्छाओं पर ही विजय पा ली है।

सुबोध— वीतरागी तो समझा, पर सर्वज्ञता क्या चीज़ है ?

प्रबोध— जो सब कुछ जानता है, वही सर्वज्ञ है। जिसके ज्ञान का पूर्ण विकास हो गया है, जो तीन लोक की सब बातें—जो भूतकाल में हो गईं, हो रही हैं, और भविष्य में होंगी—उन सब बातों को एक साथ जानता हो, वही सर्वज्ञ है।

सुबोध— अच्छा तो बात यह रही कि जो राग-द्वेष (पक्षपात) रहित हो और पूर्ण ज्ञानी हो, वही सच्चा देव है।

प्रबोध— हाँ बात तो यही है, वह जो भी उपदेश देगा, वह सच्चा और अच्छा होगा। उसका उपदेश हित करनेवाला होने से ही उसे हितोपदेशी कहा जाता है।

सुबोध— उसका उपदेश सच्चा और अच्छा क्यों होगा ?

प्रबोध— झूठ तो अज्ञानता से बोला जाता है। जब वह सब कुछ जानता है तो फिर उसकी वाणी सच्ची ही होगी तथा उसे जब राग-द्वेष नहीं तो वह बुरी बात क्यों कहेगा, अत: उसका उपदेश अच्छा भी होगा।

सुबोध— देव तो समझा पर शास्त्र किसे कहते हैं ?

प्रबोध— उसी देव की वाणी को शास्त्र कहते हैं। वह वीतराग है, अत: उसकी वाणी भी वीतरागता की पोषक होती है। राग को धर्म बताये, वह वीतराग की वाणी नहीं। उसकी वाणी में तत्त्व का उपदेश आता है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें कहीं भी तत्त्व का विरोध नहीं आता है।

सुबोध— इसके पढ़ने से लाभ क्या है ?

प्रबोध— जीव खोटे रास्ते चलने से बच जाता है, और उसे सही रास्ता प्राप्त हो जाता है।

सुबोध— ठीक रहा। देव और शास्त्र तो तुमने समझा दिया और गुरुजी तो अपने मास्टर साहब हैं ही।

प्रबोध— पगले। मास्टर साहब तो विद्यागुरु हैं। उनका भी आदर करना चाहिये। पर जिन गुरु की हम पूजा करते हैं, वे तो नग्न दिगम्बर साधु होते हैं।

सुबोध— अच्छा तो मुनिराज को गुरु कहते हैं। यह क्यों नहीं कहते, सीधी सी बात है, जो नग्न रहते हों, वे गुरु कहलाते हैं।

प्रबोध— तुम फिर भी नहीं समझे। गुरु नग्न रहते हैं, यह तो सत्य है, पर नग्न रहनेमात्र

से कोई गुरु नहीं हो जाता। उनमें और भी बहुत सी अच्छी बातें होती हैं। वे भगवान की वाणी के मर्म को जानते हैं।

सुबोध— अच्छा और कौन-कौन सी बातें उनमें होती हैं ?

प्रबोध— वे सदा आत्म-ध्यान, स्वाध्याय में लीन रहते हैं। सर्वप्रकार के आरंभ-परिग्रह से सर्वथा रहित होते हैं। विषय-भोगों की लालसा उनमें लेशमात्र भी नहीं होती। ऐसे तपस्वी साधुओं को गुरु कहते हैं।

सुबोध— वे ज्ञानी भी होते होंगे ?

प्रबोध— क्या बात करते हो, बिना आत्मज्ञान के तो कोई मुनि बन ही नहीं सकता।

सुबोध— तो आत्मज्ञान के बिना यह क्रियाकाण्ड (बाह्याचरण या व्यवहारचारित्र) सब बेकार है क्या ?

प्रबोध— सुनो भाई! मूल वस्तु तो आत्मा को समझकर उसमें लीन होना है। आत्मविश्वास (सम्यग्दर्शन) आत्मज्ञान (सम्यग्ज्ञान) और आत्मलीनता (सम्यक्चारित्र) जिसमें हो, तथा जिसका बाह्याचरण भी आगमानुकूल हो, वास्तव में सच्चा गुरु तो वही है।

सुबोध— तो तुम इनकी ही पूजन करने जाते होगे। हम भी चला करेंगे। पर यह तो बताओ इससे हमें मिलेगा क्या ?

प्रबोध— फिर तुमने नासमझी की बात की। पूजा इसलिये की जाती है कि हम भी उन जैसे बन जावें। वे सब कुछ छोड़ गये, उनसे संसार का कुछ मांगना कहाँ तक ठीक है ?

सुबोध— अच्छा ठीक है, कल से हमें भी ले चलना।

(वीतराग विज्ञान पाठमाला, भाग-२, पृष्ठ ७ से ११)

धर्मात्मा की धर्मपरिणति

धर्मात्मा को सम्यग्दर्शनपूर्वक जितनी वीतरागपरिणति हुई है, उतना धर्म है; उसके साथ शुभोपयोग भले हो, किंतु वह शुभोपयोग स्वयं कहीं धर्मपरिणति नहीं है।—ऐसा समझाकर फिर आचार्यदेव शुद्धोपयोग के फल का वर्णन करके उसमें आत्मा को प्रोत्साहित करते हैं। अहो! यह शुद्धोपयोग का आनंद!!

[प्रवचनसार, गाथा ११-१३ के प्रवचनों से]

धर्मपरिणति और शुद्धोपयोग परिणति में क्या अंतर है?—तो कहते हैं कि—आंशिक धर्मपरिणति तो सम्यग्दर्शन होने पर धर्मात्मा को सदैव वर्तती रहती है, और शुद्धोपयोग तो कभी-कभी होता है; सातवें गुणस्थान से लेकर ऊपर के गुणस्थानों में शुद्धोपयोग परिणति सदा होती है। धर्मी को शुभोपयोग परिणति हो, तब भी आंशिक वीतरागतारूप धर्मपरिणति तो साथ में वर्तती ही है, परंतु शुभोपयोग के समय शुद्धोपयोग परिणति की व्याप्ति नहीं है।

यहाँ कहा है कि—शुभोपयोग के समय भी धर्मपरिणति होती है; उससे ऐसा नहीं समझ लेना चाहिये कि शुभोपयोग, वह धर्म है। धर्म तो अंतर में स्वोन्मुखता के बल से रागरहित परिणति हुई, उतना ही है; जो शुभराग रहा, वह तो विरुद्ध परिणति है, वह कहीं धर्म नहीं है। उस शुभराग में कहीं ऐसी शक्ति नहीं है कि मोक्षरूप कार्य कर सके। वह तो बंधन का ही कारण है। मोक्ष का कारण तो शुद्धपरिणति ही है।

धर्मपरिणत जीव को शुभोपयोग होता है, उसका क्या फल है—वह बतलाया; परंतु उससे कहीं धर्मपरिणत जीव के शुभोपयोग को आचार्यदेव ने धर्म नहीं कहा है; उस शुभ को तो विरोधी कार्य करनेवाला बतलाया है। अविरुद्ध कार्य ऐसा जो मोक्ष, उससे विरुद्ध कार्य अर्थात् बंधन—शुभराग, वह बंधन कर्ता है। शुद्धोपयोगरूप चारित्र तो मोक्षरूप स्वकार्य करने में समर्थ है; किंतु वह चारित्र जब शुभरागसहित हो, तब उस राग के सद्भाव के कारण अपने

अविरुद्ध कार्य को नहीं साध सकता; शुभराग आस्रवतत्त्व होने से मोक्ष से विरुद्ध कार्य करनेवाला है।

अहो, आचार्यदेव ने इस गाथा में शुद्ध परिणति और शुभराग—दोनों का भिन्न-भिन्न फल बतलाकर दोनों को अत्यंत स्पष्टता से समझाया है। शुद्धपरिणति का कार्य मोक्ष, और शुभपरिणति का कार्य बंध—इसप्रकार दोनों के मार्ग भिन्न हैं। भले ही एक जीव के दोनों भाव एकसाथ हों, किंतु दोनों का कार्य भिन्न है। धर्मात्मा का शुभराग भी बंध का ही कारण है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। तो फिर अज्ञानी के शुभ की तो बात ही क्या! ज्ञानी को शुभ के समय जितनी शुद्धपरिणति है, वह तो मोक्ष का ही अविरुद्ध कारण है।

जीव स्वयं परिणमनस्वभावी है; इसलिये धर्मपरिणतिरूप या अशुभपरिणतिरूप से स्वयं ही परिणमित होता है; स्वयं ही अपने परिणमनस्वभाव से उन-उन भावों में तद्रूप होकर उसकाल परिणमित होता है; किसी अन्य के कारण वे परिणाम नहीं होते। इसलिये निमित्त के कारण कोई भी परिणाम हो—यह बात नहीं रहती।

अब, स्वतः से जो परिणाम होते हैं उनमें, जो शुद्धपरिणाम हैं, वह तो धर्म है, वह मोक्ष का कारण है। और उस समय जो शुभपरिणाम होते हैं, वह कहीं धर्म नहीं है, वह मोक्ष का कारण नहीं है; वह तो पुण्यबंध का कारण है।

अहा, कितनी स्पष्ट बात!! पर के कारण तेरे कोई परिणाम नहीं होते, और तेरे परिणाम में जो शुभ है, वह कोई धर्म नहीं है। स्वभाव का अवलंबन करके जितनी शुद्ध परिणति हुई, उतना ही धर्म है, उतना ही मोक्ष का कारण है और वही उपादेय है।

शुद्ध उपयोगरूप परिणमित ध्रुव आत्मा ही अनुभव करने योग्य

श्री प्रवचनसार गाथा १९१-१९२-१९३-१९४ में आचार्यदेव विभक्त शुद्धात्मा को बतलाकर, मोहक्षय के लिए उसकी भावना-उसकी उपलब्धि-उसका अनुभव-उसका ध्यान करने को कहते हैं। यहाँ उसका सार दिया जा रहा है।

ज्ञेय ऐसे समस्त तत्त्वों में स्व क्या और पर क्या? ऐसे भेदज्ञान द्वारा जिसने यथार्थ भिन्नता की है, उस जीव को फल में क्या प्राप्त होता है? वह यहाँ बतलाते हैं।

प्रथम तो निश्चयनय द्वारा समस्त परद्रव्यों से भिन्न ऐसे अपने शुद्धद्रव्य को ज्ञान-दर्शनमय मानना चाहिये। जो जीव ऐसे शुद्धद्रव्य को नहीं मानते, तथा अशुद्ध मिश्रित द्रव्य का कथन करनेवाले ऐसे व्यवहारनय से विमोहित होकर शरीर-धन आदि को अपना मानकर ममत्व करते हैं, वे जीव मिथ्यादृष्टि हैं और उन्होंने श्रामण्य के मार्ग को दूर से ही छोड़ दिया है, मोक्ष के मार्ग से विरुद्ध ऐसे उन्मार्ग में वे वर्तते हैं। शुद्धनय द्वारा स्व-पर का यथार्थ भेदज्ञान करके, शुद्ध आत्मा का अनुभव करना ही मुनिपना का मार्ग है।

शुद्धनय द्वारा स्व-पर की अत्यंत भिन्नता जानकर 'शुद्ध ज्ञान ही एक मैं हूँ' ऐसा जिसने अनुभव किया है तथा शरीरादि परद्रव्यों के साथ स्वस्वामीपने के संबंध को सर्वथा छोड़ दिया है, उसी को अपने आत्मस्वभाव में एकाग्रतारूप ध्यान द्वारा शुद्धात्मपना होता है और वही मोक्षमार्ग है। इसलिये ऐसा शुद्धात्मा ही अनुभव में लेने योग्य है; तथा ऐसे अनुभव के फल में परम मोक्षसुख प्राप्त होता है।

शरीरादि को व्यवहार से अर्थात् अशुद्धनय से आत्मा का कहा, वहाँ उस व्यवहार में ही मोहित होता हुआ अज्ञानी, शरीर वह मेरा और मैं उसका कर्ता एवं स्वामी—इसप्रकार मान बैठा है, तथा उनके पीछे पड़ने में रुक गया है। क्योंकि जिसको अपना माने, उसमें कर्तापन, स्वामित्व का अधिकार माना ही जाता है। ज्ञानी तो जानता है कि मेरे लिये सदा रहनेवाला ऐसा मेरा शुद्ध आत्मा ही ध्रुव है, इसलिये वही अनुभव में लेने योग्य है। शुद्ध उपयोगरूप से परिणमन करनेवाला ऐसा मेरा ध्रुव आत्मा ही मुझे अनुभव करनेयोग्य है, इसके अतिरिक्त अन्य सब मुझसे असत् है। वे संयोगरूप चाहे हों, परंतु मैं उन्हें मेरे रूप से किंचित् मात्र भी अनुभव करता नहीं हूँ।

धर्मी जानता है कि मैं ज्ञानात्मक हूँ, दर्शनस्वरूप हूँ, अतीन्द्रिय महापदार्थ हूँ, ध्रुव हूँ, अचल हूँ, और शुद्ध हूँ... ऐसे अपने आत्मा का ही मैं अनुभव करता हूँ।

शुद्ध आत्मा सत् और अहेतुक है, उसके स्वभाव की सत्ता में कोई हेतु नहीं। स्वत: सिद्ध अनादि-अनंत सत् हैं। ऐसा शुद्ध आत्मा ही आत्मा को ध्रुव है, दूसरा कुछ भी इस आत्मा के लिये ध्रुव नहीं है। संयोग तो सर्व अध्रुव हैं और परत:सिद्ध हैं क्योंकि कर्मोदय आदि बाह्य कारणों के द्वारा संयोग आते है, वे कहीं आत्मा के साथ सदा नहीं रहनेवाले हैं; इसलिये ध्रुव नहीं हैं। शुद्ध आत्मा ही ध्रुव है, इसलिये वही उपलब्ध करने योग्य है, उसी की श्रद्धा-ज्ञान और लीनता करने योग्य है। अध्रुव ऐसे अन्य संयोग से क्या प्रयोजन है ? देखो, यहाँ संयोग को अध्रुव कहने से उसमें पाप और पुण्य दोनों का फल आ जाता है, पुण्य का फल भी अध्रुव है। समवसरण का संयोग भी आत्मा के लिये अध्रुव है। उसके आश्रय से कल्याण नहीं होता है। अपने ध्रुव आत्मा के आश्रय से ही कल्याण होता है, क्योंकि वह शुद्ध है।

आत्मा को शुद्धत्व के कारण ध्रुवपना कहा। अब उसे शुद्धत्व कैसे है ? तो कहते हैं कि एकत्व होने से उसे शुद्धपना है। पर से भिन्नत्व और स्व से अभिन्नत्व—ऐसे एकत्व के कारण आत्मा को शुद्धता है और शुद्धता होने से ध्रुवता है, ध्रुवता होने से वही आश्रय करने योग्य है। उसी के आश्रय से परम सुख का अनुभव होता है।

— ध्रुवत्व के कारण आश्रय करने योग्य कहा।

— शुद्धत्व के कारण ध्रुव कहा।

— एकत्व के कारण शुद्ध कहा।

— अब वह एकत्व पाँच बोल से बतलाते हैं:—

(१) ज्ञानात्मकत्व के कारण,

(२) दर्शनभूतत्व के कारण,

(३) अतीन्द्रिय महा पदार्थत्व के कारण,

(४) अचलत्व के कारण, और

(५) निरालम्बत्व के कारण आत्मा को एकत्व है।

देखो, इन पाँच बोलों से आत्मा का एकत्व बतलाया। आत्मा को ऐसा एकत्व होने से शुद्धत्व है, शुद्धत्व होने से ध्रुवत्व है, ध्रुवत्व होने से वह आश्रय लेने योग्य है—अनुभव करने योग्य है; उसके अनुभव से मोह का क्षय होकर वीतरागी परम सुख प्राप्त होता है।—देखो, यह मोक्ष की विधि।

— ज्ञान-दर्शनस्वरूप इस आत्मा को, जो ज्ञान के साथ तन्मय नहीं ऐसे परपद्रव्यों से विभाग है—भिन्नता है, और ज्ञानादि स्वधर्मों से अविभाग है-एकता है, इसलिये उसको एकत्व है। पर से भिन्नता और स्व में एकता—ऐसे आत्मा को शुद्धता है और वही ध्रुवपने से उपादेय है।

—पाँच इन्द्रियों द्वारा तो स्पर्शादि एक-एक विषय का ग्रहण होता है, इन्द्रियाँ आत्मा का स्व-रूप नहीं; उन इन्द्रियों से रहित आत्मा अपनी महान चैतन्यशक्ति द्वारा एक साथ समस्त पदार्थों को जाननेवाला महान पदार्थ है। ऐसा एक सत् महान चैतन्य पदार्थ होने से उसको जड़ इन्द्रियों से भिन्नता है, और ज्ञानस्वरूप स्वधर्मी से एकता है—इसप्रकार आत्मा को एकपना है। तथा ऐसे एकत्व के अनुभव से शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है।

— ज्ञेयरूप पर्यायें समय-समय विनाश को प्राप्त होती हैं; उन क्षणिक ज्ञेयपर्यायों को आत्मा जानता है परंतु उनको वह ग्रहण करता और छोड़ता भी नहीं है, वह तो ज्ञेयों से भिन्न अपने ज्ञान में ही तन्मयरूप से अचल रहता है; इसप्रकार परज्ञेयों से भिन्नता और ज्ञानरूप स्वधर्मी से अभिन्नता होने से आत्मा को एकत्व है। अनेक ज्ञेयों को जानने से स्वयं वह ज्ञेयों के प्रवाह में बह नहीं जाता, ज्ञेयों को जानने से उसमें वह मिल नहीं जाता, वह तो अपने ज्ञानप्रवाह में ही एकरूप से परिणमन करता है। ऐसे एकत्व के कारण आत्मा को शुद्धत्व है।

— आत्मा से भिन्न ऐसे जो शाश्वत् जड़-चेतन ज्ञेय द्रव्य जगत में अनंत हैं, उन ज्ञेय

द्रव्यों का आश्रय (आलंबन) ज्ञान को नहीं; आत्मा के ज्ञान का प्रवाह उन ज्ञेयों में से नहीं आता, उन ज्ञेयों से तो ज्ञान भिन्न है, ज्ञान का प्रवाह आत्मा में से आता है। आत्मा के अवलंबन से प्रगट हुई जो ज्ञानपर्याय, वह स्वधर्म है, और उस स्वधर्म से आत्मा को अभिन्नपना है; इसप्रकार परद्रव्य के धर्मी से भिन्नत्व और स्वधर्मी से अभिन्नत्व होने से आत्मा को एकत्व है।

देखो, पाँच बोल द्वारा अस्ति-नास्ति से आत्मा का एकत्वस्वरूप बतलाता है। ऐसा एकत्व होने से आत्मा शुद्ध है।

अहो, मेरे ज्ञानधर्म में मुझे परज्ञेय का अवलंबन नहीं, इन्द्रियों का अवलंबन नहीं; मेरे ज्ञानस्वभाव का मुझे अवलंबन है। शुद्ध और ध्रुव ऐसा मेरे आत्मा का ही मुझे अवलंबन है—इसप्रकार धर्मी मानता है और जो ऐसे निजस्वरूप को मानता है, उसी को मोह का क्षय होता है।

इसप्रकार शुद्धनय परद्रव्यों से विभक्त और स्वधर्मी से अविभक्त, ऐसे शुद्ध आत्मा का स्वरूप बतलाता है। ऐसा शुद्ध आत्मा ध्रुव होने से वह उपलब्ध करने योग्य है, उसे अनुभव में लेने योग्य है। आत्मा को जगत के किसी पदार्थ का संयोग ध्रुव नहीं रहता, अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा ही ध्रुव रहता है, उसका कभी वियोग नहीं; इसलिये वही एक आश्रय करनेयोग्य है। दूसरे पदार्थों का संबंध तो वृक्ष की छाया समान अस्थिर है, अध्रुव है। जिसप्रकार मार्ग में चले जा रहे मुसाफिर को अनेक वृक्षों की छाया का संसर्ग होता है, परंतु वह छाया कहीं मुसाफिर के साथ नहीं आती है, छाया नयी-नयी बदलती है और मुसाफिर तो एक का एक ही रहता है; मुसाफिर उस छाया का ही आश्रय समझकर खड़ा रहे तो वह अपने निश्चित स्थान पर नहीं पहुँच सकता है। मुसाफिर को वृक्ष की छाया का आश्रय नहीं है। उसीप्रकार मोक्ष का प्रवासी ऐसा यह आत्मा, उसे बीच मार्ग में वृक्ष की छाया जैसे शरीरादि के अनेक संयोग आते हैं, परंतु धर्मी उसे उपलब्ध नहीं करता, उसे परद्रव्य जानता है, उससे भिन्न अपना स्वरूप जानकर उसी का आश्रय करता है। ध्रुव ऐसा शुद्धात्मा एक ही मोक्षार्थी जीव को शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है।

जिसप्रकार समुद्र के बीच में एक जहाज चला जाता हो, उस जहाज पर बैठे हुए पक्षी को समुद्र के बीच उस जहाज के अतिरिक्त दूसरा कोई शरण नहीं, वह पक्षी उड़-उड़कर फिर से वापिस जहाज पर ही आकर बैठता है। उसीप्रकार मध्य समुद्र जैसा यह संसार समुद्र, उसमें

जीव को अपने ध्रुव शुद्धस्वभाव के अतिरिक्त दूसरा कोई शरणरूप नहीं है, सर्व संयोग अध्रुव और भिन्न हैं। ऐसी भिन्नता जानने से धर्मी अपने स्वभाव का ही अवलंबन लेता है, पुनः पुनः उसकी परिणति अपने स्वरूप के सन्मुख होती है। किसी शुभाशुभ कर्मोदय अनुसार लक्ष्मी-शरीर-अनुकूल-प्रतिकूल संयोग हों, तो भी धर्मी उसे अपने से अत्यंत भिन्न ही देखता है; अपने को तो ज्ञानदर्शनस्वरूप अतीन्द्रिय महान पदार्थ की भाँति अपने में अनुभव करता है—ऐसे आत्मा का अनुभव करे, उसी को मोह का नाश होता है और उसी को मुनिपना तथा केवलज्ञान तथा परम सुख प्रगट होता है।

आत्मा का सुख

आत्मा के स्वभाव में सहज सुख है। शरीरादि में आनंद न होने पर भी कल्पना से उसमें जो आनंद मानता है—वह स्वयं आनंदस्वरूप है। अपना आनंद अपने में भरा है परंतु अपने आनंद को भूल गया, इसलिये उसका आरोप दूसरे में किया कि 'इसमें मेरा आनंद है'—परंतु यह आरोप मिथ्या है-झूठा है। 'पर में मेरा सुख'—इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा यहाँ और उसका सुख कहीं अन्य, इसलिये आत्मा और सुख दोनों भिन्न ही सिद्ध हुए; सुख, वह आत्मा का स्वभाव नहीं रहा। परंतु भाई, ऐसा (सुख रहित) आत्मा नहीं होता है। आत्मा तो सुखस्वरूप है। आत्मा आनंद से रिक्त नहीं, आत्मा अपने आनंद से भरा हुआ है। इसका भान-अनुभव करने से आनंद के स्वाद का वेदन होता है।

अध्यात्म संत श्री कानजी स्वामी

लेखक ब्रह्मचारी हरिलाल जैन (जीवन परिचय भाग-२)

[गतांक से आगे]

इसप्रकार संवत् २००९ का चैत्र मास आया तथा मानस्तंभ के महोत्सव की मंगल बधाई लाया। जैसी मानस्तंभ की विचित्र शोभा, वैसा ही उसकी प्रतिष्ठा का उत्सव! भक्तजन तो मानस्तंभ की तथा महोत्सव की शोभा देख-देखकर प्रसन्न होते थे। प्रतिष्ठा-महोत्सव के समय छह हजार जितने अतिथि आये थे। उन्हीं दिनों श्रवणबेलगोला में भगवान बाहुबली का महा मस्ताभिषेक का प्रसंग होने से वहाँ जाते-आते हजारों यात्री सोनगढ़ आते थे और सोनगढ़ यात्रियों से भरा रहता था। जैन समाज के अधिकांश प्रतिष्ठित लोग सोनगढ़ आ गये थे। मानस्तंभ के प्रतिष्ठा महोत्सव की तो क्या बात? श्री नेमिनाथ भगवान का पंचकल्याणक-जन्मोत्सव, बरात तथा वैराग्य प्रसंग, सहस्राम्रवन में दीक्षा, नेमि मुनि को आहारदान का भावभरा प्रसंग, ३२ प्रतिमाओं पर पूज्य स्वमीजी के शुभहस्त से अंकन्यास, समवसरण की रचना तथा गिरनार पर्वत का अद्भुत दृश्य! और जब विदेहीनाथ सीमंधर भगवान मानस्तंभ पर पधारे और परमभक्ति से पूज्य स्वामीजी ने उनकी प्रतिष्ठा की, तब चारों ओर जय-जयकार और आनंद का वातावरण फैल गया। और फिर हुआ उस गगन विहारी मानस्तंभ का महा अभिषेक। अंतिम रथयात्रा की तो शोभा ही निराली थी। सौराष्ट्र में मानस्तंभ का प्रतिष्ठा-महोत्सव अद्भुत और अपूर्व था। उसमें चारों ओर से भारत के हजारों भक्तों ने भाग लिया था। उत्सव में आये हुए अनेक त्यागी भी उस समय पूज्य स्वामीजी से प्रभावित हुए थे। उन दिनों में सुवर्णधाम की शोभा अद्भुत थी। एक विशाल नगर रचा गया था—उसका नाम 'विदेहधाम' था। उत्सव में आनेवाले कहते थे कि वास्तव में हम विदेह में आये हों, ऐसा लगता है। प्रतिष्ठा के पश्चात् मानस्तंभ के चारों ओर मंच बँधा होने से पूज्य स्वामीजी सहित अनेक भक्तजन कभी-कभी ऊपर जाकर मानस्तंभ की यात्रा करते और ऊपर बैठे-बैठे भक्ति-पूजन करते; पूज्य बेनश्री-बेन किसी किसी समय तो आश्चर्यकारी भक्ति करवाती थीं। उन सबके मधुर

स्मरण आज भी आनंद को प्राप्त कराते हैं। यद्यपि पूज्य स्वामीजी ने अभी तक सौराष्ट्र के बाहर विहार नहीं किया था, तथापि उस उत्सव में यह स्पष्ट देखने में आया कि पूज्य स्वामीजी अब केवल सोनगढ़ या सौराष्ट्र के ही नहीं परंतु भारतभर के दिगम्बर जैन समाज की एक महान विभूति हैं। वैशाख सुदी दसवीं को जब मानस्तंभ प्रतिष्ठा का एक महीना पूर्ण हुआ, तब संध्या को आश्रम में पूज्य बेनश्री-बेन ने जो अचिंत्य भक्ति करवायी, वह सोनगढ़ के भक्ति-इतिहास में अजोड़ थी। मानस्तंभ पर जाने का मंच ज्येष्ठ सुदी पंचमी तक रहा था। ज्येष्ठ सुदी पंचमी को महान अभिषेक तथा पूजन-भक्ति करके पूज्य स्वामीजी ने मानस्तंभ पर विशाल भक्ति करायी थी। मंच छोड़ देने पर, आकाश में मानस्तंभ की शोभा गंधकुटी जैसी शोभायमान होती थी।

एक ओर पूज्य स्वामीजी का प्रभाव बढ़ने लगा तथा दूसरी ओर प्रवचन में तत्त्वज्ञान की स्पष्टता विशेष खिलती गई। श्वेताम्बर मत तथा दिगम्बर मत के बीच मुख्य सिद्धांत भेद कहाँ हैं, उसे पूज्य स्वामीजी ने विशेष स्पष्ट रूप से प्रसिद्ध किया। निश्चय-व्यवहार या उपादान-निमित्त आदि अनेक विषयों का भी खूब स्पष्टीकरण होने लगा और अधिक से अधिक जिज्ञासु उसका लाभ लेने लगे।

उमराला-जन्मभूमिस्थान

पूज्य स्वामीजी की जन्मभूमि उमराला सोनगढ़ से मात्र ९ मील दूर है। जन्मभूमि पुराने घर के स्थान पर वैसा ही नया जन्मधाम बनाने के लिये संवत् २००९ की वैशाख सुदी पूनम को पूज्य बेनश्री-बेन के हस्त से शिलान्यास हुआ। ऊपर के भाग में सीमंधर भगवान की वेदी तथा नीचे जन्मधाम में स्वस्तिक-स्थापना और पास में 'उजमबा स्वाध्यायगृह' का निर्माण हुआ। माघ वदी तीज को उसका उद्घाटन हुआ। उस प्रसंग का उत्सव अत्यन्त भव्य था... पूज्य स्वामीजी का जन्मधाम भक्तों के लिये दर्शनीय बना है। पूज्य स्वामीजी जब उमराला पधारते हैं, तब जन्मधाम में विशेष भक्ति होती है।

सौराष्ट्र में जगह-जगह जिनेन्द्र प्रतिष्ठा तथा गिरनार यात्रा

संवत् २०१० को हम जिनेन्द्र प्रतिष्ठा का वर्ष कह सकते हैं। सौराष्ट्र में जगह-जगह पर तैयार हुए दिगम्बर जिनमंदिरों में प्रतिष्ठा करने के लिये पूज्य स्वामीजी ने सोनगढ़ से माघ वदी तीज के दिन मंगल विहार किया। उमराला में जन्मधाम तथा स्वाध्याय गृह का उद्घाटन होने के बाद उसमें पूज्य स्वामीजी के सुहस्त से श्री समयसार की स्थापना हुई। अनेक गाँव-शहरों

में होकर महा सुदी दसवीं को पूज्य स्वामीजी गिरनार सिद्धिधाम की यात्रा को पधारे, तथा माघ सुदी ११-१२ के दिन एक हजार जितने यात्रियों के साथ गिरनार सिद्धिधाम की यात्रा बहुत ही भक्तिभावपूर्वक की। जगह-जगह वैराग्यमय उद्गारोंपूर्वक पूज्य स्वामीजी ने नेमिनाथ स्वामी का तथा गिरनार में विचरे हुए धरसेनस्वामी, कुन्दकुन्दस्वामी आदि संतों का स्मरण किया। पूज्य बेनश्री-बेन ने स्थान-स्थान पर भक्ति द्वारा अद्भुत वैराग्यरस बहाया। पूज्य स्वामीजी ने संघ सहित गिरनार धाम की वह दूसरी यात्रा की थी। उस यात्रा के बाद जूनागढ़ शहर में जिनेन्द्रदेव की विशाल रथयात्रा निकली थी। लोग कहते थे कि ऐसी रथयात्रा हमने जूनागढ़ में कभी नहीं देखी।

पूज्य स्वामीजी के साथ सौराष्ट्र के तीर्थों की यात्रा तो हुई, अब भारत के महान तीर्थ सम्मेदशिखर आदि की यात्रा पूज्य स्वामीजी के साथ हो, ऐसी भावना अनेक भक्तों के हृदय में उत्पन्न हुई।

गिरनार सिद्धिधाम की यात्रा करके पूज्य स्वामीजी पोरबंदर-मोरबी-बांकानेर पधारे। उन तीनों शहरों में नूतन जिनमंदिरों का पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा का भव्य महोत्सव मनाया। तुदपरांत वढ़वाण शहर, सुरेन्द्रनगर, राणपुर, बोटाद तथा उमराला में भी नूतन जिनमंदिर में वेदीप्रतिष्ठा का भव्य महोत्सव मनाया। उमराला-एक तो पूज्य स्वामीजी का जन्मधाम तथा उसमें अपने प्रिय सीमंधरनाथ का आगमन! उस प्रसंग के उत्सव का क्या कहना? पूज्य स्वामीजी ने रत्नों के अर्घ द्वारा अपने आँगन में प्रभु का स्वागत किया था और पुष्पवृष्टि के लिये विशेष विमान (हेलीकॉप्टर) आया था। इसप्रकार केवल चार महीने में आठ प्रतिष्ठा-महोत्सव हुए। सौराष्ट्र में सर्वत्र जिनेन्द्र प्रभाव फैल गया। ऐसे महान कार्य करके पूज्य स्वामीजी सोनगढ़ पधारे, तब हाथी पर से पुष्पवृष्टि करके भक्तों ने महान भावभरा स्वागत किया।

सौराष्ट्र में विहार करते हुए पूज्य स्वामीजी जामनगर भी पधारे थे। वहाँ सौराष्ट्र के राजप्रमुख श्री जामसाहेब ने अपने महल में निमंत्रित करके अध्यात्म-उपदेश सुना था। सच्चा आत्मिक साम्राज्य क्या है, उसे सुनकर राजप्रमुख तथा उनकी महारानी अत्यंत प्रसन्न हुए थे और ज्ञान प्रचार हेतु १००१) रुपये का दान दिया।

प्रभावना का वेग शीघ्रता से बढ़ने लगा

ज्यों-ज्यों पूज्य स्वामीजी का प्रभाव बढ़ता गया, त्यों-त्यों सोनगढ़ आनेवाले यात्रियों

की संख्या भी बढ़ने लगी। भक्ति-पूजन के लिये जिनमंदिर छोटा पड़ने लगा। पूज्य स्वामीजी की ६६वीं जन्मजयंती के अवसर पर उस जिनमंदिर को विस्तृत करने का निर्णय किया गया। आजतक सौराष्ट्र में तो अनेक जिनमंदिर बने, अब सौराष्ट्र के बाहर गुजरात के पालेज में (जहाँ पूज्य स्वामीजी बचपन में अनेक वर्ष रह चुके थे) वहाँ भी दिगम्बर जिनमंदिर बना हुआ है तथा संवत् २०१२ के कार्तिक में तो गुजरात से भी बाहर निकलकर वह प्रभाव बम्बई तक पहुँचा और वहाँ कार्तिक सुदी दसवीं को एक भव्य जिनमंदिर का शिलान्यास हुआ। बम्बई के झवेरी बाजार के निकट मुंबादेवी रोड पर दिगम्बर जिनमंदिर का निर्माण होने लगा।

प्रतिदिन बढ़ते हुए पूज्य स्वामीजी के प्रभाव के कारण भारतवर्ष के जिज्ञासुओं का आना-जाना सोनगढ़ में बहुत बढ़ गया था। दर्शन-पूजन-भक्ति के लिये जिनमंदिर काफी छोटा पड़ने लगा था, इसलिये उसका नवनिर्माण करने का निर्णय किया गया और संवत् २०१० की मंगसिर वदी पंचमी को उसका शिलान्यास हुआ। पूज्य स्वामीजी के मंगलहस्त से स्वस्तिक विधान सहित आनंदोल्लासपूर्वक शिलान्यास कराया गया। शिलान्यास के पश्चात् कुछ ही समय में भक्ति का उल्लासकारी प्रसंग बना। जो विशाल जिनमंदिर बन रहा था उसकी विशाल छत भरने का कार्य अषाढ़ सुदी १४ तथा १५ के दिन सैकड़ों भक्तों ने हाथोंहाथ किया। उस भक्ति के श्रमयज्ञ में पूज्य बेनश्री-बेन तथा नानालालभाई, रामजीभाई आदि सहित समस्त मंडल के लोग भाग लेते थे।

जब वह कार्य चला था, तब पूज्य स्वामीजी ने दो दिनों तक प्रवचन बंद रखा था। सीमेंट की गर्मी से हाथ की चमड़ी फट न जाये, उसके लिये सब लोग हाथ में कपड़े की थैली बाँधते थे। भक्ति गाते-गाते निरंतर दो दिन वह छत भरने का काम चला। वह दृश्य देखने योग्य था; उस कार्य की इतनी धुन थी कि उस समय सौराष्ट्रभर में भूकम्प का जो धक्का लगा था, उसका भी ख्याल भक्तों को नहीं आया था। छत भरी जाने के बाद उस छत पर खड़े-खड़े मुमुक्षुओं ने जो गगनभेदी जयनाद किया था, उससे आकाश गूँज उठा था; उसकी झनकार आज भी हृदय में गूँज रही है। जिन्होंने उससमय का दृश्य देखा, वे तो भक्ति देखकर चकित हो गये थे। जिनमंदिर के लिये चंदा भी उत्साहपूर्वक बढ़ता जा रहा था और लाख तक पहुँचने की तैयारी थी।

सम्मेदशिखर यात्रा का निर्णय तथा १४ बहिनों की ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा

अनेक वर्षों से जिज्ञासुओं के हृदय में पूज्य स्वामीजी के साथ श्री सम्मेदशिखरजी

शाश्वत् सिद्धिधाम की यात्रा करने की जो भावना थी, उसे पूर्ण करने का अपना निर्णय श्रावण शुक्ला १ को भक्ति के पश्चात् पूज्य स्वामीजी ने सुनाया। पूज्य स्वामीजी ने कहा कि—अगले वर्ष (संवत् २०१३) के फाल्गुन में सम्मेदशिखरजी की यात्रा के लिये पहुँचना है। अहा, उस निर्णय को सुनते ही समस्त मुमुक्षु मंडल में सर्वत्र आनंद फैल गया कि—पूज्य स्वामीजी के साथ तीर्थयात्रा का सुअवसर प्राप्त होगा... वह संदेश सुनकर अनेक नगरों के मुमुक्षुओं ने अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की। भक्तों के हृदय पूज्य स्वामीजी के साथ तीर्थयात्रा के लिये आतुर हो रही थे... जिस यात्रा का निर्णय सुनते ही मुमुक्षुओं में प्रसन्नता फैल गयी थी, वह यात्रा कैसी आनंदकारी होगी!

संवत् २०१२, भादौं शुक्ला पंचमी को एक साथ १४ कुमारिका बहिनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा ग्रहण की, वह अवसर भी अपूर्व एवं वैराग्य उत्पन्न करनेवाला था।

सवा लाख रुपये की लागत से तैयार हुए भव्य नूतन जिनमंदिर के ऊपरी भाग में भगवान नेमिनाथ की पुनः वेदीप्रतिष्ठा संवत् २०१३ कार्तिक शुक्ला १२ दिन हुई; वह उत्सव भी अत्यंत हर्षोल्लास से मनाया।... 'सीमंधरनाथ कितने प्यारे?'—कि 'जितना अंतर का ज्ञान प्यारा'... वह वाणी में केसे आये?—आदि प्रकार से भगवान की अद्भुत भक्ति होती थी। जिनमंदिर के शिखर पर जाकर पूज्य स्वामीजी ने कलश एवं ध्वज को स्पर्श किया। लगभग ७५ फीट की ऊँचाई पर जिनमंदिर का धर्मध्वज लहरा रहा है। महोत्सव के पश्चात् चाँदी की गंधकुटीवाले नवीन रथ में भगवान की जो रथयात्रा निकली, उसकी शोभा और उसका उल्लास अद्भुत था! भक्तों को कलकत्ता की रथयात्रा याद आती थी। सोनगढ़ का भव्य जिनमंदिर देखकर भक्त कहते थे कि जिसप्रकार मूळबिद्री में त्रिभुवनतिलकचूड़ामणि जिनालय है, उसीप्रकार अपना यह जिनमंदिर 'सम्यक्त्व शिखरचूढ़ामणि' है।

सोनगढ़ का उत्सव समाप्त होते ही तुरंत ही पूज्य स्वामीजी ने मंगलतीर्थ यात्रा के लिये विहार किया। बीच में पालेज के जिनमंदिर का प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। पालेज के जिनमंदिर में पूज्य स्वामीजी ने स्वहस्त से श्रेयांसनाथ, सीमंधरनाथ आदि भगवंतों को भाव से विराजमान किया, और पश्चात् बम्बईनगर में १०-१५ हजार लोगों की सभा में परम सत्य की घोषणा करके सिद्धिधाम की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। अहा, ऐसे तीर्थों की अपूर्व यात्रा! पूज्य स्वामीजी जहाँ-जहाँ जाते, वहाँ ऐसा स्वागत होता कि वहाँ की जनता आश्चर्य से बोल उठती

कि हमने अपने नगर में ऐसा स्वागत कभी नहीं देखा। यात्रा का संपूर्ण वर्णन तो 'मंगलतीर्थयात्रा' नामक गुजराती पुस्तक में छपा हुआ है, जिसको पढ़ने पर मुमुक्षुओं को इस यात्रा की विशालता एवं महत्ता ख्याल में आ जाती है। इस यात्रा में ५०० यात्री; ८ मोटर बसें तथा ३० मोटर कारें थी। पूज्य स्वामीजी के साथ अनेक तीर्थों की यात्रा की।

सोनगढ़ से वल्लभीपुर, बरवाला, खंभात, वडवा, अगास, बड़ौदा, पालेज, भरूच, अंकलेश्वर, सूरत, भिवंडी, बम्बई; उसके पश्चात् गजपंथा, मांगीतुंगी, रावलगाँव, एलौरा, मालेगाँव, धुलिया, बडवानी... पावागिरि-ऊन, खंडवा, सनावद, सिद्धवरकूट, इंदौर, उज्जैन, मक्सी-पार्श्वनाथ सारंगपुर, ब्यावरा, राघौगढ़, सोनकच्छ, भोपाल, कुराना, नरसिंहगढ़, गुना, बजरंगगढ़, कोलारस, सेसई, शिवपुरी, झाँसी, थुवोनजी, आगरा, शौरीपुर-बटेश्वर, मथुरा, फिरोजाबाद, मैनपुरी, कानपुर, लखनऊ, रत्नपुरी, अयोध्यापुरी, बनारस (काशी), चंद्रपुरी, सिंहपुरी, डालमियानगर, आरा, पटना, राजगृही, कुंडलपुर-नालंदा, पावापुरी, गुणवा, गया, सम्मेदशिखरजी, चंपापुरी-मंदारगिरि, ऋजुवालिकातीर, जमशेदपुर, झरिया, धनबाद, कलकत्ता, खंडगिरि-उदयगिरि, चोपारन, इलाहाबाद, कानपुर, कुरावली, एटा, हस्तिनापुर, अलवर, देली, सहरानपुर, आमेर, जयपुर, अलीगढ़-टोंक, अजमेर, लाडनू, सुजानगढ़, कुचामन, किशनगढ़, ब्यावर, शिवगंज, जावाल, आबू, तारंगा, अहमदाबाद होकर सोनगढ़ पधारे।

मधुवन में हजारों लोगों की सभा में जो प्रवचनधारा बहती थी, वह अद्भुत थी... पंडित बंशीधरजी ने भावभरा भाषण करके साहसपूर्वक गद्गद्भाव से कहा कि—अनंत तीर्थंकरों तथा आचार्यों ने सत्य दिगम्बर जैनधर्म को अर्थात् मोक्षमार्ग को प्रगट करने का जो संदेश सुनाया था, वही श्री कानजीस्वामीजी की वाणी में हम सब यहाँ सुन रहे हैं। अनेक तीर्थों की भावभरी यात्रा करके चैत्र कृष्ण छठ को पूज्य स्वामीजी सोनगढ़ पधारे, तब भव्य स्वागत हुआ और सुवर्णपुरी का छह महीने से सुप्त वातावरण फिर से गूँजने लगा।

यात्रा-उत्सव के उपलक्ष में सोनगढ़ में अषाढ़ मास की अष्टाह्निका में सिद्धचक्रविधान-पूजन बहुत ही उत्साह से मनाया गया। यात्रा के छह हजार फीट चलते-फिरते चित्रों (Film) द्वारा उन तीर्थों को जब सोनगढ़ में देखते हैं, तब यात्रा का आनंद फिर से ताजा हो जाता है।

संवत् २०१४ में लींबडी शहर में पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा के कारण पूज्य स्वामीजी ने विहार किया।

दक्षिण देश की विशाल यात्रा तथा बम्बई का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

संवत् २०१५ के पौष में पूज्य स्वामीजी ने बम्बई प्रतिष्ठा तथा दक्षिण देश के तीर्थों की यात्रा के लिये विहार किय। इस तीर्थयात्रा में धंधुका, अहमदाबाद, पालेज, दाहोद, बड़वानी, नासिक, लींबड़ी होकर बम्बई पधारे। बम्बई में मुंबादेवी मैदान में पंचकल्याणक का अत्यंत भव्य प्रतिष्ठा महोत्सव मनाया गया। वहाँ 'महावीरनगर' की सुंदर रचना हुई थी, २५००० लोगों का समावेश हो सके, ऐसा विशाल प्रतिष्ठा-मंडप बनाया गया था। बम्बई शहर में मनाया गया वह प्रतिष्ठा-महोत्सव बम्बई के इतिहास में अद्वितीय था। झवेरी बाजार में जिनमंदिर लगभग ४ लाख रुपये की लागत से बनवाया गया है। उत्सव में लगभग दो लाख का खर्च तथा ढाई लाख की आमदनी हुई थी। इस महोत्सव के दृश्यों को देखकर बम्बई की जनता मुग्ध हो गई थी। प्रवचन में पन्द्रह हजार लोग लाभ लेते थे। माघ शुक्ला छठ को जिनमंदिर में भगवंतों की प्रतिष्ठा करके अष्टमी के दिन पूज्य स्वामीजी ने ६५० जितने यात्रियों के विशाल संघ सहित दक्षिण-यात्रा के लिये प्रस्थान किया।

बम्बई से पूना फल्टन, जोगफाल्स, हूमच, कुन्दापुर, कुन्द्रादि, मूलबिद्री, कारकल, वेणुर, हलीबीड, श्रवणबेलगोला, मैसूर, बंगलौर, कांजीवरम्, पुंडीनगरी, मद्रास, पोन्नूर, बंदेवास, अकलंबस्ती, केरंडे, नेल्लूर, बेजवाडा, हैदराबाद, सोलापुर, कुंथलगिरि, धाराशिवनी की गुफाओं उस्मानाबाद, एलोरा, अजन्ता, जलगाँव, मलकापुर, शिवपुर, बासीम, कारंजा, परतवाडा (एलिचपुर), मुक्तागिरि, अमरावती, भातकुली, बजारगाँव, नागपुर, डोंगरगढ़, खैरागढ़, रामटेक, सीवनी, जबलपुर, मढियाजी, खजुराहा, मूलघाट, पनागर, दमोह, कुंडलपुर-सिद्धक्षेत्र, शाहपुर, द्रोणगिरि, सिद्धक्षेत्र, पपौराजी, टीकमगढ़, अहारजी, ललितपुर, देवगढ़, चंदेरी, बारा, चाँदखेड़ी, झालरापाटन, कोटा, बूंदी, भातपुरा, नीमच, चित्तौड़, उदयपुर, ऋषभदेव-केसरियाजी (धूलेव) ईडर, सोनासन, रामपुरा, फतेपुर, तलोद, रखियाल, दहेगाम, कलोल, अहमदाबाद, पोलारपुर, शिहोर, भावनगर, घोघा होकर सोनगढ़ पधारे।

पूज्य स्वामीजी जहाँ जाते, वहाँ हजारों लोग उत्सुकता से संघ को देखते थे। लोग गुजराती तो क्या, हिन्दी भाषा भी नहीं समझते थे, तथापि प्रवचन में हजारों लोग आते और पूज्य स्वामीजी का प्रभाव देखकर गदगद होते थे। कानडी-तामिल आदि भाषा में प्रवचन का

थोड़ा-बहुत अनुवाद भी सुनाने में आता था। प्रतिदिन नये-नये तीर्थों तथा नये-नये मंदिरों के दर्शन करते हुए आनंद होता था। दोनों यात्राओं से पूज्य स्वामीजी को तथा यात्रियों को भी तीर्थ का तथा तीर्थ में उत्पन्न हुई उत्तम भावनाओं का स्मरण जीवन में मिला है। उसमें भी भगवान बाहुबली के दर्शनों से उत्पन्न हुई अद्‌भुत भावनाएँ तो यात्रा के पश्चात् आज भी अनेकों बार पूज्य स्वामीजी याद करते हैं। पोन्नूर को भी अनेक बार याद करते हैं। फतेपुर में पूज्य स्वामीजी का ७०वाँ जन्मदिवस अतीव उत्साह से सौराष्ट्र-गुजरात के मुमुक्षुओं द्वारा मनाया गया था। भारत के महान तीर्थों की ऐसी उल्लासभरी मंगलयात्रा हुई, उसके लिये परम पूज्य स्वामी का हम सब पर महान-महान उपकार है। संसार से तिरने के लिये तीर्थ वे ही हम सबको दिखला रहे हैं। सम्यक्‌तीर्थ की अपूर्व यात्रा करवा के सिद्धिधाम की ओर ले जानेवाले पूज्य स्वामीजी के चरणों में भक्तों का हृदय भक्ति से नम जाता है।

पूज्य स्वामीजी का प्रभाव अब मध्य-भारत में भी पहुँच गया था। जब पूज्य स्वामीजी खैरागढ़ पधारे, तब वहाँ नूतन दिगम्बर जिनमंदिर में वेदी प्रतिष्ठा का महोत्सव हुआ और दो कुमारिका बहिनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ग्रहण की थी। पहले यहाँ दिगम्बर जैनों का एक भी घर न होने से नया दिगम्बर जैनमंदिर बना, तथा वेदी प्रतिष्ठा-महोत्सव भी हुआ।

सम्यक्त्व-सन्मुख जीव की
पात्रता का वर्णन

सम्यग्दर्शन के सन्मुख हुए जीव की पात्रता कैसी होती है, उसका यह वर्णन है। जो अभी सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं हुआ है, परंतु उसे प्राप्त करने के लिये तत्त्वनिर्णय आदि का उद्यम करता है—ऐसे जीव की यह बात है। जिसे आत्मा का हित करने की भावना हुई है, सम्यग्दर्शन प्रगट करके आत्मा का कल्याण करने की लालसा जागृत हुई है, ऐसे जीव को प्रथम तो कषाय की मंदता हुई है, तत्त्व-निर्णय करने जितनी ज्ञान की शक्ति का विकास हुआ है, निमित्तरूप से सच्चे देव-गुरु-शास्त्र मिले हैं और स्वयं को उनकी प्रतीति हुई है; ज्ञानी के निकट उपदेश मिला है और स्वयं अपने प्रयोजन के हेतु मोक्षमार्ग आदि का उपदेश सुना है; कौन से भाव आत्मा को हितकारी हैं और कौन से भाव अहितकारी हैं; सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप क्या है और कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र कैसे हैं ? जीवादि नवतत्त्वों का स्वरूप क्या है ? द्रव्य-गुण-पर्याय क्या, उपादान-निमित्त का स्वरूप क्या, मोक्षमार्ग का सच्चा स्वरूप क्या—इत्यादि प्रयोजनभूत विषयों का उपदेश गुरुगम से मिला है और स्वयं अंतर में उनका निर्णय करके समझने का प्रयत्न करता है; उन्हें समझकर स्वयं अपना ही प्रयोजन सिद्ध करना चाहता है। उपदेश की धारणा करके मैं दूसरों को सुनाऊँ या दूसरों को समझा दूँ—ऐसे आशय से नहीं सुनता, परंतु अपना कल्याण करने की ही भावना है।

देखो, यह तो अभी सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पूर्व की पात्रता बतलाते हैं। जो अपना कल्याण करना चाहता है, उसे मंदकषाय और ज्ञान का विकास तो होता ही है; तदुपरांत प्रथम तो ज्ञानी के पास से सच्चा उपदेश मिलना चाहिए,—अज्ञानी-कुगुरुओं के उपदेश से यथार्थ निर्णय नहीं होता। जिसके कुदेव-कुगुरु तो छूट गये हैं, निमित्तरूप से सच्चे देव-गुरु-शास्त्र मिल गये हैं और कषाय की मंदतापूर्वक तत्त्वनिर्णय का उद्यम करता है—ऐसे जीव की यह बात है। देखो, इसमें क्या करने को कहा है। तत्त्व-निर्णय का उद्यम करने को कहा है। जो कुदेव-कुगुरु को मानते हैं; सर्वज्ञ को आहार मानते हैं, मुनियों को वस्त्र मानते हैं; व्यवहार के

आश्रय से मोक्षमार्ग होना मानते हैं—ऐसे जीव तो तीव्र मिथ्यादृष्टि हैं, उनमें तो सम्यक्त्व होने की पात्रता भी नहीं है। जैनधर्म का जो मूल है—ऐसे सर्वज्ञ को भी जो न जाने, वह तो गृहीत-मिथ्यादृष्टि है, ऐसे जीवों की यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो जो जीव सर्वज्ञ को पहिचानकर मानता है, सच्चे देव-गुरु को मानता है और उनके कहे हुए यथार्थ तत्त्वों का निर्णय करके सम्यग्दर्शन प्रगट करने का उद्यम करता है—ऐसे जीव की बात है। देखो, उस सम्यक्त्वसन्मुख जीव में कैसी-कैसी पात्रता होती है, वह बतलाते हैं:—

(१) प्रथम तो उसकी कषाय मंद हो गई है; आत्मा का हित करने की जिज्ञासा हुई, वहाँ मंदकषाय हो ही जाती है;

(२) सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्व का विचार और निर्णय करने से जितनी ज्ञान की शक्ति प्रगट हो गई है। यदि निर्णय और स्वानुभव करे तो पूर्व की बातों को निमित्त कह सकते हैं परंतु जिसे आत्मा की दरकार नहीं है, वह जीव तत्त्वनिर्णय में अपनी बुद्धि को नहीं लगाता, किंतु बाह्य विषय-कषाय में ही बुद्धि लगाता है।

(३) जो सम्यक्त्वसन्मुख है, उस जीव को मोह की मंदता हुई है; इसलिये वह तत्त्वविचार में उद्यमी हुआ है; दर्शनमोह की मंदता हुई है और चारित्रमोह में भी कषायों की मंदता हुई है; अपने भाव में मिथ्यात्वादि का रस बहुत मंद हो गया है और तत्त्व के निर्णय की ओर उन्मुखता है। सांसारिक कार्यों की लोलुपता कम करके आत्मा का विचार करने में उद्यमी हुआ है। सांसारिक कार्यों से अवकाश ले (-उनकी रुचि कम करे), तब आत्मा का विचार करे न! जो संसार की तीव्र लोलुपता में पड़ा हो, उसे आत्मा का विचार कहाँ से आयेगा? जिसके हृदय में से संसार का रस उड़ गया है और जो आत्मा के विचारों का उद्यम करता है कि—'अरे! मुझे तो अपने आत्मा को सुधारना है, दुनिया तो ज्यों की त्यों चलती रहेगी; दुनिया की चिंता छोड़कर मुझे तो अपना हित करना है'—ऐसे जीव की यह बात है।

(४) उस जीव को बाह्य निमित्तरूप से सच्चे देव-गुरु-शास्त्रादि की प्राप्ति हुई है; उसके कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की मान्यता छूट गई और सर्वज्ञवीतरागदेव की ही मानता है। अरिहंत भगवान की वीतरागी प्रतिमा भी देव है। शास्त्र में नव देव पूज्य कहे हैं:—पंचपरमेष्ठी, जिनधर्म, जिनवाणी, जिनचैत्य और जिनबिम्ब—यह नौ देवरूप से पूज्य हैं। सर्वज्ञवीतरागदेव को पहिचाने और दिगम्बर संत-भावलिंगी मुनि मिले, वे गुरु हैं; तथा कोई ज्ञानी सत्पुरुष

निमित्तरूप से मिलें, वे भी ज्ञान-गुरु हैं। पात्र जीव को ज्ञानी का उपदेश ही निमित्तरूप से होता है। नरकादि गतियों में मुनि आदि का साक्षात् निमित्त नहीं है, परंतु पूर्वकाल में ज्ञानी की देशना प्राप्त हुई है, उसके संस्कार वहाँ निमित्त होते हैं। देव-गुरु के बिना अकेले शास्त्र सम्यग्दर्शन का निमित्त नहीं हो सकते; इसलिये कहा है कि सम्यक्त्वसन्मुख जीव को कुदेवादि की परंपरा छोड़कर सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की परंपरा प्राप्त हुई है।

(५) और उस जीव को सत्य उपदेश का लाभ मिला है। ऐसे निमित्तों का संयोग मिलना, वह तो पूर्व के पुण्य का फल है, और सत्यतत्त्व के निर्णय का उद्यम—वह अपना वर्तमान पुरुषार्थ है। पात्र जीव को निमित्त कैसे होते हैं, वह भी बतलाते हैं कि—निमित्तरूप से सत्य-उपदेश मिलना चाहिए। यथार्थ मोक्षमार्ग क्या, नवतत्त्वों का स्वरूप क्या, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं, स्व-पर, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, सम्यग्दर्शनादि हितकारी भाव तथा मिथ्यात्वादि अहितकारी भाव—इन सबका उपदेश यथार्थ मिला है। उपदेश मिलना तो पुण्य का फल है, परंतु वह उपदेश सुनकर तत्त्व का निर्णय करने की जिम्मेवारी अपनी है—यह बात अब कहते हैं।

(६) ज्ञानी के पास से सत्यतत्त्व का उपदेश मिलने के पश्चात् स्वयं सावधान होकर उसका विचार करता है; जैसा-तैसा ऊपर-ऊपर से सुन नहीं लेता परंतु बराबर ध्यानपूर्वक सुनकर सावधानरूप से उसका विचार करता है। और उपदेश सुनते हुए बहुमान आता है कि—अहो! मुझे इस बात की तो खबर ही नहीं है; ऐसी बात तो मैंने पहले कभी सुनी ही नहीं है। देखो, यह जिज्ञासु जीव की योग्यता! उसे जगत की दरकार नहीं है; दूसरे बहुत से जीवों को समझा दूँ या दूसरों का कल्याण कर दूँ—ऐसे विचारों में वह नहीं अटकता, किन्तु मेरे आत्मा का हित किसप्रकार हो—इसी की उसे लगन लगी है। इस जीव के शुभराग के कारण कहीं परजीवों का हित नहीं हो जाता, परजीवों का हित-अहित होना उनके अपने परिणाम के आधीन है; इसलिये मैं जगत के जीवों का उपकार करूँ या देश का उद्धार कर दूँ—ऐसा वह नहीं मानता। वह तो अपने आत्मा के प्रयोजन का ही विचार करता है और सावधान होकर अंतर में मोक्षमार्ग तथा जीवादितत्त्व इत्यादि का विचार करता है। जिसे अपने आत्मा का हित करना हो, वह जगत को देखने के लिये नहीं रुकता। बाह्य में अनेक ग्रामों में जिनमंदिरों की रचना हो और अनेक जीव धर्म प्राप्त करें तो मेरा कल्याण हो जाये—ऐसा विचार करके यदि

बाह्य में ही रुका रहे तो आत्मा की ओर कब देखेगा ? अरे भाई ! तू अपने आत्मा में ऐसा मंदिर बना कि जिसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी भगवान आकर विराजमान हो जायें ! भक्ति प्रभावनादि का शुभराग आये, वह अलग बात है, परंतु पात्र जीव उस राग पर भार न देकर आत्मा के निर्णय का उद्यम करता है। अहो ! ऐसे तत्त्व की मुझे अभी तक खबर नहीं थी; मैंने भ्रम से रागादि को ही धर्म माना था और शरीर को ही अपना स्वरूप मानकर उसमें तन्मय हो रहा था, शरीर की क्रिया से धर्म मान रहा था, लेकिन यह शरीर तो जड़-अचेतन है और मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ; इस शरीर का संयोग तो अल्पकाल के लिये ही है; यह मनुष्यभव कहीं स्थायी रहनेवाला नहीं है; यहाँ मुझे हित के सर्व निमित्त प्राप्त हुए हैं, इसलिये मुझे मोक्षमार्गादि का यथार्थ निर्णय करना चाहिये। ऐसा विचार कर तत्त्व-निर्णय का उद्यम करता है।

देखो, यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की तैयारीवाले जीव की पात्रता ! सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पूर्व ही ऐसा निर्णय करता है कि मैं आत्मा अनादि-अनंत हूँ और इस शरीर की स्थिति तो अल्पकाल की ही है; इसलिये तत्त्वनिर्णय करके मुझे अपने आत्महित का प्रयोजन साध लेना चाहिये। अरे ! अल्पकाल का जीवन है, उसमें आत्मा का ही करने जैसा है:—ऐसा विचार करके सांसारिक कार्यों में से रस कम करके चेतनस्वरूप अपना निर्णय करने का उद्यम करता है। उसी में अपना हित भासित हुआ है, इसलिये वह कार्य करने में प्रीति और हर्षपूर्वक लगा रहता है। इसप्रकार उसे अपना कार्य करने का अत्यंत उल्लास है; इसलिये जो उपदेश सुने, उसका विचार करके निर्धार करने का निरंतर उद्यम करता है। दुनिया को सुधार दूँ, और देश का उद्धार कर दूँ—ऐसे विचारों में नहीं रुकता, परंतु मैं तत्त्व को समझकर अपना उद्धार कर लूँ—ऐसा विचार कर तत्त्वनिर्णय का उद्यम करता है।—'काम एक आत्मार्थ का अन्य नहीं मन रोग।'

(७) तत्त्वनिर्णय करने के लिये प्रथम तो तत्त्वों के नाम और लक्षण जान लेता है और स्वयं परीक्षा द्वारा विवेक करके तत्त्व के भावों को जानकर निर्णय करता है। अज्ञानियों के विरुद्ध उपदेश को तो मानता ही नहीं, परंतु ज्ञानी के पास से जो यथार्थ उपदेश मिला है, उसका भी स्वयं उद्यम करके निर्णय करता है; बिना विचारे नहीं मान लेता, किंतु अपने विचार को साथ मिलाकर तुलना करता है। ज्ञानी के पास से सुन लिया, किंतु फिर—'यह किसप्रकार है'—इसप्रकार स्वयं उनके भाव को पहिचानकर निर्णय न करे तो सत्य प्रतीति नहीं होती।

इसलिये कहा है कि ज्ञानी के पास से तत्त्व का जो उपदेश सुना, उसे धारण कर रखता है और फिर एकांत में विचार करके स्वयं, उसका निर्णय करता है। जो उपदेश सुनने में ही ध्यान न रखे और उस समय अन्य सांसारिक विचारों में लग जाए तो उसे तत्त्वनिर्णय की दरकार ही नहीं है। क्या कहा है, उसकी धारणा भी न करे तो फिर विचार करके अंतर में निर्णय कैसे करेगा? जिसप्रकार गाय खाने के समय खा लेती है, और फिर बाद में आराम से बैठकर जुगाली करके पचाती है; उसीप्रकार जिज्ञासु जीव जैसे उपदेश सुने, वैसा बराबर याद कर लेता है और फिर एकांत में विवेकपूर्वक विचार करके उसका निर्णय करता है और अंतर में परिणमित करने का प्रयत्न करता है। यथार्थ उपदेश का श्रवण करना, याद रखना, विचार करना और उसका निर्णय करना—ऐसी बातें रखी हैं। तत्त्वनिर्णय की शक्ति अपने में होना चाहिए। इस जीव को इतना ज्ञान का विकास तो हुआ है परंतु उस ज्ञान को तत्त्व का निर्णय करने में लगाना चाहिये। सुनने के पश्चात् स्वयं अकेला अपने उपयोग में विचार करे कि श्रीगुरु ने ऐसा कहा, वह किसप्रकार है?—इसप्रकार उपदेशानुसार स्वयं निर्णय करने का प्रयत्न करता है। मात्र सुनता और पढ़ता ही रहे परंतु स्वयं कुछ भी विचार करके तत्त्वनिर्णय में अपनी शक्ति न लगाये, तो उसे यथार्थ प्रतीति का लाभ नहीं होता। 'मैं ज्ञानानंद आत्मा हूँ; अपने आश्रय से ही मेरा हित है, अपने अतिरिक्त पर का अवलंबन करने से रागादिक भाव होते हैं, उनमें मेरा हित नहीं हैं'—इसप्रकार तत्त्व के भाव का भासन होना चाहिये, तभी स्वसंवेदनसहित यथार्थ तत्त्वश्रद्धान है। ऐसा तत्त्वश्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन का लक्षण है।

सर्वज्ञ-वीतराग का प्राणी मात्र के लिये

अनुपम संदेश

१— यह जीव अनादिकाल से अपने स्वरूप को भूलकर शुभ-अशुभ विकार तथा पर के साथ एकत्व की श्रद्धा, ज्ञान और मिथ्या आचरण से ही दु:खी हो रहा है, क्योंकि कोई संयोग सुख-दु:ख का कारण नहीं हो सकता, स्वयं पैदा की हुई मिथ्या मान्यता और अपने को भूल जाने रूप पराश्रय-बहिर्मोह दृष्टि ही दु:ख का कारण है। ऐसा जानकर प्रत्येक सुखार्थी को मिथ्यादर्शनादि भावों का त्याग करना चाहिए।

२—'वस्तु स्वभाव, सो धर्म' संसार में 'धर्म' ऐसा नाम तो सभी लोग कहते हैं, किंतु धर्म शब्द का अर्थ जो ऐसा है कि जो स्वाश्रय दृष्टि-ज्ञान और आत्मबल द्वारा नरकतिर्यंचादि गति में परिभ्रमण रूप दु:खों से आत्मा को छुटाकर उत्तम आत्मिक अविनाशी अतीन्द्रिय-मोक्ष सुख में पहुँचावें वह धर्म है।

स्वाधीन वस्तु स्वभाव ही धर्म है

ऐसा धर्म बाजार में नहीं बिकता कि धन देकर दान सन्मान आदि से प्राप्त हो जाये, तथा किसी के देने से दिया नहीं जाता कि किसी की सेवा उपासना से प्रसन्न करके प्राप्त किया जा सके, तथा मंदिर, पर्वत, जल, अग्नि, देव मूर्ति, तीर्थादि में धर्म नहीं रखा है—कि वहाँ जाकर ले आये, अथवा उपवास व्रत, कायक्लेशादि तप में शरीरादि कृश करने से भी प्राप्त नहीं होता।

देवाधि देव तीर्थंकर भगवान के मंदिर में उपकरण-दान, मंडल विधान पूजा आदि से तथा घर छोड़कर वन-श्मशान में रहने से तथा परमेश्वर का नाम जपने आदि से भी आत्मा का धर्म प्राप्त नहीं हो सकता है। धर्म तो आत्मा का स्वाश्रित स्वभाव है। पर मैं आत्मबुद्धि छोड़कर अर्थात् पर से भला-बुरा होने की मान्यता, पर का कुछ किया जा सकता है, शुभाशुभरूप व्यवहार के आश्रय से धर्म होता है, रागादि कषाय, नोकषाय करने योग्य है—ऐसी भी मान्यता तथा परद्रव्य क्षेत्र कालादि के कारण मुझे रागादि होते हैं, ऐसी मान्यता में पर में आत्माबुद्धि है। इस महान भूल को भलीभाँति जानकर उससे रहित मैं त्रिकाल ज्ञायक स्वभावरूप हूँ,

सर्वज्ञस्वभावी हूँ, पर का कर्ता-भोक्ता-स्वामी नहीं हूँ—ऐसे निर्णयसहित पूर्ण ज्ञानस्वभावी आत्मा के निश्चय तथा स्वानुभव द्वारा पराश्रय की श्रद्धा छोड़कर अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव की श्रद्धा, उसका ज्ञान तथा ज्ञायकस्वभाव में ही प्रवर्तनरूप जो आचरण, वह 'धर्म' है। इसलिये हे आत्मान्! तू धर्म की प्राप्ति के लिये एकमात्र अपनी ओर सन्मुख हो, इसी से मात्र धर्म की प्राप्ति होती है। 'हे धर्म! हमेशा मेरी रक्षा करो' (—गुणभद्राचार्य)

३— लोक में जीव अनंत हैं, शेष अजीव ऐसे—पुद्गल अनंतानंत, धर्म, अधर्म और आकाश एक-एक है, काल असंख्यात है। हे आत्मन्! तेरी आत्मा का अन्य दूसरी आत्माओं से और शेष पुद्गलादि द्रव्यों से किसी भी प्रकार का कोई संबंध नहीं है। तेरा कार्य ज्ञातादृष्टा है, ऐसा जानकर हे सुखार्थी प्राणी! तू अपनी ही ओर देख, पर की ओर मत देख, इससे ही तुझे अपने में अनंत चतुष्टय की प्राप्ति होगी, यही अविनाशी सुख प्राप्त करने का उपाय है।

४—छः द्रव्य अनादि-अनंत है। अपनी-अपनी मर्यादा लिये परिणमन करते हैं। किसी का परिणमन किसी के आधीन नहीं और न किसी के परिणमन कराने से किसी का परिणमन होता है। एक-दूसरे में दूसरे को परिणमन कराने का भाव मिथ्यादर्शन है, इसलिये हे आत्मन! जिस द्रव्य का, जिस-जिसप्रकार का परिणमन होता है, उसे जानो और देखो, उसमें अहंकार ममकार की भावना मत करो। सर्वज्ञ ने देखा जाना है, ऐसा जानकर, श्रद्धा में लाकर स्वसन्मुखता करने से ही रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) की प्राप्ति होगी, जो सुखी होने का उपाय है।

५— जिस जीव को, जिस देश में, जिस विधि से, जन्म-मरण सुख-रोग और दारिद्र इत्यादि जैसे सर्वज्ञदेव ने जाने हैं, उसीप्रकार वे सब नियम से होंगे। सर्वज्ञदेव ने जिसप्रकार जाना है, उसीप्रकार उस जीव के, उसी देश में, उसी काल में और उसी विधि से नियमपूर्वक सब होता है। उसको निवारण करने के लिये इन्द्र या जिनेन्द्र तीर्थंकरदेव कोई भी समर्थ नहीं है क्योंकि सब द्रव्यों की जो-जो अवस्था होती है, वह क्रमबद्ध और निश्चित हैं, ऐसा जो जानता और अनुभव करता है, वह पात्र सम्यग्दृष्टि कहलाता है और जो नहीं मानता, वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है। इसलिये हे आत्मा! तेरी पर मैं कर्ता-भोक्ता की बुद्धि व्यर्थ है, एकमात्र अपनी ओर सन्मुख होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती है, वह कर।

६— सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता ही मोक्षमार्ग है और कोई मोक्षमार्ग नहीं है।

अनादि से मिथ्यादृष्टि जीव निश्चय-व्यवहार दो प्रकार का मोक्षमार्ग मानता है किंतु मोक्षमार्ग दो नहीं हैं, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग बतलाया है, वह तो निश्चय मोक्षमार्ग है और जहाँ मोक्षमार्ग तो है नहीं परंतु मोक्षमार्ग का निमित्त है, उसे उपचार से मोक्षमार्ग बतलाया है। ऐसा न समझकर दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्यात्व है।

निजदर्शन वश श्रेष्ठ है, अन्य न किंचित् मान।
हे योगी! शिव हेतु ए, निश्चय से तू मान॥

७— हे जीव! हे प्रभु! तू कौन है? इसका कभी विचार किया है? ऐसा स्थान कौन सा है और तेरा कार्य क्या है, इसकी भी खबर है? प्रभु, विचार तो कर, तू कहाँ है और यह सब क्या है, तुझे शांति क्यों नहीं है?

प्रभु! तू सिद्ध है, स्वतंत्र है, परिपूर्ण है, वीतराग है, किंतु पराश्रय की रुचि के कारण तुझे अपने स्वरूप की खबर नहीं है, इसलिये तुझे शांति नहीं है। भाई, वास्तव में तू घर भूला है, मार्ग भूल गया है। दूसरे के घर को तू अपना निवास मान बैठा है किंतु ऐसे अशांति का अंत नहीं होगा। भगवान! शांति तो तेरे अपने घर में ही भरी हुई है। भाई, एक बार सब ओर से अपना लक्ष हटाकर निज घर में तो देख। तू प्रभु है, सिद्ध है। प्रभु, तू अपने निज घर में देख, पर में मत देख। पर में लक्ष कर करके तो तू अनादि काल से भ्रमण कर रहा है। अब तू अपने अंतर स्वरूप की ओर तो दृष्टि डाल। एक बार तो भीतर देख। भीतर परम आनंद का अनंत भंडार भरा हुआ है, उसे तनिक सम्हार तो देख। एक बार भीतर में झांक, तुझे अपने स्वभाव का कोई अपूर्व परम, सहज सुख अनुभव होगा।

अनंत ज्ञानियों ने कहा है कि तू प्रभु है, प्रभु! तू अपने प्रभुत्व की एक बार हाँ तो कह।

८— भगवान महावीर का संदेश है कि प्रत्येक प्राणी स्व को पहचान ले। प्रयोजनभूत तत्त्वों को जानने से ही लाभ होगा इसलिये:—

१- प्रथम तो परीक्षा द्वारा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की मान्यता छोड़कर, अरिहंत देवादि का श्रद्धान करना चाहिये, क्योंकि उनका श्रद्धान करने से गृहीत मिथ्यात्व का अभाव होता है!

२- फिर जिनमत में कहे हुए जीवादि तत्त्वों का विचार करना चाहिये, उनके नाम लक्षण सीखना चाहिये, क्योंकि उस अभ्यास से तत्त्वश्रद्धान की प्राप्ति होती है।

३- स्व-पर का भिन्नत्व भासित हो, ऐसा विचार करते रहना चाहिये, इस अभ्यास से भेदज्ञान होता है।

४- तत्पश्चात् एक स्व में स्वपना मानने के हेतु स्वरूप का विचार करते रहना चाहिये क्योंकि इस अभ्यास से आत्मानुभव की प्राप्ति होती है।

जीव का कर्तव्य तो तत्त्वनिर्णय का अभ्यास ही है और इस अभ्यास में प्रमाद करे तो कर्म का दोष नहीं है, तेरा ही दोष है, ऐसा जानकर क्रम से अभ्यास कर तो मोक्षमार्ग पर आरूढ़ होकर, भगवान महावीर की तरह प्रत्येक आत्मा सुख शांति को प्राप्त करे।

९— शांतभाव, ज्ञान, चारित्र और तप, यह सब यदि सम्यग्दर्शनरहित हो तो पुरुष को पत्थर की भाँति बोझ समान है परंतु यदि उनके साथ सम्यग्दर्शन हो तो वे महामणि समान पूज्य है।

१. मुनिव्रतधार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

२. जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय।

—ऐसा जानकर प्रत्येक प्राणी को अपने स्वरूप का अनुभव करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर मोक्षरूपी लक्ष्मी का आनंद लेना चाहिये।

१०— जब हम किसी का कुछ बना-बिगाड़ ही नहीं सकते, किसी चीज़ में कोई हेर-फेर कर ही नहीं सकते, तो व्यर्थ में फिर हाय-हाय किस बात की ? कौन डॉक्टर चाहता है कि एक मरीज तो ठीक हो जाये और दूसरा मर जावे। यदि मरीज को ठीक करना डाक्टर के हाथ में होता, तब तो उसे सब मरीजों को ठीक कर लेना चाहिये था। पर चूँकि वह ऐसा कर नहीं सकता तो सिद्ध होता है कि हर चीज़ पूर्व निश्चित है। मनुष्य मुफ्त में ही हाय हाय, तेरी-मेरी करता है। जिस जीव को "मैं किसी परपदार्थ कुछ नहीं कर सकता, इन बातों का दृढ़ श्रद्धान हो जाता है तो वह स्वोन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर शीघ्र ही संसार सागर से पार हो जाता है।"

इस जीव को अपना कल्याण अपने आप ही करना है। भगवान भी स्वयं दूसरों का कल्याण नहीं कर सकते। यदि ऐसा संभव होता तो माँ स्वर्ग में जाये, तो बच्चें को लाभ अवश्य हो जाना चाहिये था, पर ऐसा होता नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि जीव अपना कल्याण अपने से ही कर सकता है।

समझ में नहीं आता कि हम संसार में प्यार किसको करते हैं ? आदमी कहता है कि मैं अपनी स्त्री को सबसे ज्यादा प्यार करता हूँ। ठीक मान लिया, पता नहीं वह उसके शरीर या आत्मा किससे प्यार करता है ? यदि शरीर से प्यार करता है, तब तो आत्मा निकल जाने पर भी उसके निर्जीव शरीर को उसे प्यार करना चाहिए, क्यों वह उसे जल्दी से जल्दी दाह संस्कार के लिए भेज देना चाहता है और यदि यह माना जाये कि वह उसकी आत्मा से प्यार करता है तो मान लो कि मरकर वह जीव (आत्मा) मच्छर, खटमल, सूअर इत्यादि की योनि में यदि चली जाये तो क्या वह मच्छर, खटमल इत्यादि का आलिंगन कर लेगा, नहीं करेगा। समझ में नहीं आता कि फिर यह सब मोहजाल किस वास्ते ? इसलिए प्रवचनसार पृष्ठ १९ में लिखा है कि ''निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकता का संबंध नहीं है कि जिससे शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति के लिए सामग्री (बाह्य साधन) ढूँढ़ने की व्यग्रता से जीव व्यर्थ ही परतन्त्र दुखी होता है।''—ऐसा जानकर अपनी ओर देख, पर की ओर मत देख, यही महावीर का अनुपम संदेह है।

११— आकुलता का घटना-बढ़ना रागादि कषाय घटने-बढ़ने के अनुसार है तथा पर द्रव्यरूप बाह्य सामग्री के अनुसार सुख-दुःख नहीं है। परद्रव्य के निमित्त से सुख-दुःख होता है, ऐसा मानना मिथ्याबुद्धि है; इसलिये हे आत्मा! रागादि कषायरहित अपने स्वभाव का अनुभव कर, ताकि निराकुलता की प्राप्ति हो जाये।

१२— हे आत्मा! तू धर्म प्राप्त करने के लिये प्रयोजनभूत तत्त्वों का निर्णय कर, क्योंकि तत्त्वनिर्णय करने में कोई कर्म का दोष नहीं हैं, तेरा ही दोष है और तू स्वयं तो महंत रहना चाहे और अपना दोष कर्मादिक को लगावे, यह अनीति जिन आज्ञा माननेवाले के संभव नहीं है। जो जीव विषय-कषाय में रहना चाहता है, वह ही झूठ बोलता है। मोक्ष की सच्ची अभिलाषावाला कर्म का दोष नहीं देखता। इसलिये हे आत्मा! तू संसार में परिभ्रमण अपने पागलपन से ही कर रहा है, यह पागलपन तेरा ही किया हुआ है। तू अपने त्रैकालिक निर्मल स्वभाव की दृष्टि करके ही इस पागलपन को मिटा सकता है, इसलिये इस कार्य को अवश्य ही कर। सर्व अवसर आ चुका है।

अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य के गुण (-पर्याय) उत्पन्न नहीं कर सकता

'अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य के गुण (-पर्याय) उत्पन्न नहीं कर सकता' ऐसा श्री अमृतचन्द्राचार्य समयसार कलश २१९ में कहते हैं:—

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्टया नान्यद्रव्यं वीक्ष्यते किंचनापि।
सर्वं द्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति व्यक्तानंतं स्वस्वभावेन यस्मात्॥२१९॥

अर्थः—तत्त्वदृष्टि से देखने पर, रागद्वेष को उत्पन्न करनेवाला अन्य द्रव्य किंचित् नहीं दिखाई देता, कारण कि सभी द्रव्यों की उत्पत्ति (-प्रत्येक द्रव्य की पर्यायों की उत्पत्ति) अपने स्वभाव से ही होती हुई अंतरंग में अत्यंत प्रगट प्रकाशित होती है।

भावार्थः—रागद्वेष चेतन के ही परिणाम हैं, अन्य द्रव्य आत्मा को रागद्वेष उत्पन्न नहीं करा सकता; कारण कि सभी द्रव्यों और पर्यायों की उत्पत्ति अपने-अपने स्वभाव से ही होती है, अन्य द्रव्य में अन्य द्रव्य के गुण-पर्यायों की उत्पत्ति नहीं होती॥२१९॥ अब इस अर्थ को श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव गाथा ३७२ में कहते हैं कि—अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य के गुण की (-पर्याय की) उत्पत्ति नहीं की जा सकती; इसलिये (यह सिद्धांत है कि) सब द्रव्य अपने-अपने स्वभाव से ही उत्पन्न होते हैं।

टीकाः—जीव को परद्रव्य रागादि उत्पन्न कराते हैं, ऐसी शंका नहीं करना; क्योंकि अन्य द्रव्य द्वारा अन्य द्रव्य के गुण का (पर्याय का) उत्पाद कराने की अयोग्यता है; (अर्थात् पर के कार्य करने की किसी द्रव्य में योग्यता-सामर्थ्य नहीं है) क्योंकि सब द्रव्यों का स्वभाव से ही उत्पाद (-द्रव्य में नवीन पर्याय की प्राप्ति) होती है।

[यहाँ विस्तार से दृष्टांत देकर उपरोक्त सिद्धांत आचार्यदेव ने बताया है] इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि जीव को रागादि का उत्पादक हम परद्रव्य को देखते (-मानते-जानते) नहीं कि जिस पर क्रोध करें।●●

वीतराग-विज्ञान

[लेखक : ब्रह्मचारी हरिलाल जैन]

वीतराग-विज्ञान को नमस्कार करने में अनंत अरिहंत भगवंतों को नमस्कार किया, ऐसा आ जाता है, क्योंकि सर्व अरिहंत भगवान वीतराग-विज्ञानस्वरूप हैं। किसी एक अरिहंत का (सीमंधर, महावीर आदि) नाम नहीं लिया परंतु 'वीतराग-विज्ञान' के कहने में समस्त अरिहंत आ जाते हैं। समस्त पंच परमेष्ठी भगवान भी वीतराग विज्ञानरूप हैं, इसलिये वीतराग-विज्ञान को नमस्कार करने पर उसमें समस्त पंचपरमेष्ठी भगवान आ जाते हैं। गुण अपेक्षा से एक अरिहंत को नमस्कार करने से सर्व अरिहंतों को नमस्कार हो जाता है।

पंडित श्री टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक के मंगलाचरण में वीतराग-विज्ञान को ही नमस्कार किया है—

''मंगलमय मंगलकरण वीतराग विज्ञान;
नमौं ताहि, जातैं भये अरहंतादि महान।''

मंगलमय और मंगलकरण, ऐसा जो वीतराग-विज्ञान उसे नमस्कार करता हूँ कि जिसके कारण अरिहंतादि का महानपना है। अरिहंतादि का पूज्यपना वीतराग-विज्ञान के कारण ही है। अरिहंतादि का स्वरूप वीतराग-विज्ञानमय है, तथा उस गुण के कारण ही वे स्तुतियोग्य महान हुए हैं। जीवत्व तो सब समान है, परंतु रागादि विकार द्वारा और ज्ञान की हीनता द्वारा जीव निंदनीय होता है; तथा रागादिक की हीनता तथा ज्ञान की विशेषता द्वारा जीव पूज्यनीय होता है। अरिहंत तथा सिद्ध भगवंतों को रागादि का सर्वथा अभाव और ज्ञान की पूर्णता होने से वे संपूर्ण वीतराग-विज्ञानमय हैं; और आचार्य-उपाध्याय-साधु को एकदेश वीतरागता तथा ज्ञान की विशेषता होने से उनको एकदेश वीतराग-विज्ञानपना है। इसीप्रकार पंचपरमेष्ठी भगवान वीतराग-विज्ञानमय होने से पूज्य हैं, ऐसा जानना।

वीतराग-विज्ञान, वह तीन लोक में साररूप है। अधोलोक, मध्यलोक या ऊर्ध्वलोक; नरक में, मनुष्यलोक में या देवलोक में—तीन लोक में जीवों को वीतराग-विज्ञान ही साररूप-

हितरूप है, सर्वत्र वही उत्पन्न है, वही प्रयोजनरूप है। जिसप्रकार 'समयसार' अर्थात् सर्व पदार्थों में साररूप ऐसा शुद्धात्मा, उसे समयसार के मंगल में नमस्कार किया है; उसीप्रकार यहाँ तीन लोक में सार ऐसा वीतराग-विज्ञान को मंगलरूप से नमस्कार किया है। अहो, वीतराग-विज्ञान ही जगत में सार है—वही उत्तम है, इसके अतिरिक्त शुभराग या पुण्य वह कहीं साररूप नहीं, वह उत्तम नहीं; राग-द्वेष रहित ऐसा केवलज्ञान ही उत्तम और साररूप है, धर्मात्मा को केवलज्ञान चाहिये—इसलिए उसे स्मरण करके वंदन किया है और उसकी भावना करते हैं।

श्रीमद् राजचंद्रजी भी अंतिम काव्य में सर्वज्ञपद का स्मरण करके कहते हैं कि—

चाहे है जो योगीजन अनंत सुखस्वरूप,
मूल शुद्ध वह आत्मपद सयोगी जिनस्वरूप।

सयोगी जिन कहो कि वीतराग-विज्ञान स्वरूप अरिहंतदेव कहो, वह शुद्ध आत्मपद है, और योगीजन-धर्मात्मा उसे चाहते हैं। ''सुखधाम अनंत सुसंत चही, दिनरात रहे तद्ध्यान मही''—अनंत सुखस्वरूप ऐसी केवलज्ञान पर्याय, वह आत्मा का निजपद है, वह आत्मा का शुद्धस्वभाव है; संत उसी को चाहते हैं। वीतराग-विज्ञान को जो वंदन करता है, वह राग को सारभूत कैसे मान सकता है ?—नहीं मान सकता।

ऊर्ध्व लोक में सिद्धालय से लेकर सौधर्म स्वर्ग तक, मध्यलोक में असंख्यात द्वीप समुद्रों में, और अधोलोक में नीचे—इसप्रकार तीन लोक में आत्मा को साररूप हो तो वह वीतराग-विज्ञान है। 'वीतराग' कहने में सम्यक्चारित्र आता है; तथा 'विज्ञान' कहने पर सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन आता है। इसप्रकार वीतराग-विज्ञान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का समावेश हो जाता है। ऐसा वीतराग-विज्ञान शिवरूप है, आनंदस्वरूप है, मंगलरूप है, पूर्णज्ञान तथा पूर्ण आनंदस्वरूप ऐसा केवलज्ञान, वह महान सारभूत है; साधक को जितना अंश वीतराग-विज्ञान है, उतना आनंदरूप है, तथा वह पूर्णानंदरूप मोक्ष का कारण है। देखो, प्रारंभ से ही वीतराग-विज्ञान को मोक्ष का कारणरूप बतलाते हैं, परंतु शुभराग, वह मोक्ष का कारण है—ऐसा नहीं कहा। इसप्रकार मोक्ष का कारणरूप ऐसे वीतराग-विज्ञान को ही साररूप समझकर उसे मैं नमस्कार करता हूँ; 'सावधानी से' अर्थात् उसको उद्यमपूर्वक नमस्कार करता हूँ। राग से विमुख होकर और शुद्धस्वभाव के सन्मुख होकर, ऐसी निश्चय सावधानी से अर्थात्

निर्मोहीरूप से सर्वज्ञ को नमस्कार करता हूँ; तथा बाह्य में शुभराग के निमित्तरूप मन-वचन-काय की सावधानी है।

आत्मा की प्रतीति तथा अनुभवपूर्वक ही छद्मस्थ को वीतराग-विज्ञान होता है; चौथे गुणस्थान से लेकर जितना सम्यग्ज्ञान है, वह रागरहित ही है। स्वसंवेदन है, वह वीतराग ही होता है, रागवाला नहीं होता, यह बात परमात्मप्रकाश में बारम्बार 'वीतराग-स्वसंवेदन' ऐसा कहकर समझाने में आयी है। साधक भूमिका में चाहे राग हो परंतु उसका जो स्वसंवेदनज्ञान है, वह तो वीतराग ही है। यहाँ मुख्यरूप से पूर्ण वीतराग ऐसे केवलज्ञान की बात है। अहो, जगत में जो भी जीव अपना हित करना चाहता हो, उसको पूर्ण केवलज्ञान पद ही वंदन करने योग्य है, वही आदरणीय है, उसी को हितरूप समझकर वह प्रगट करने योग्य है। सर्वज्ञपद की अचिंत्य अपार महिमा जानकर मेरा अंतरंग उस वीतराग-विज्ञान की ओर झुकता है-नमता है।—ऐसी परिणति का नाम साधकदशा है।

देखो, इस मंगलाचरण में भगवान के गुणों को पहिचानकर नमस्कार होता है। समंतभद्रस्वामी कहते हैं कि 'वन्दे तद्गुणलब्धये' अर्थात् भगवान जैसे अपने गुणों की प्राप्ति के लिये मैं उनको नमस्कार करता हूँ। वीतराग विज्ञानरूप केवलज्ञान, वह पर्याय है, और उसे प्रगट करने की आत्मा में शक्ति है। रागरहित एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा जिनका सामर्थ्य है, वह पर्याय आत्मा में से ही प्रगट होती है। ऐसे आत्मा को श्रद्धा में लेकर अनुभवपूर्वक वीतराग-विज्ञान को जिसने नमस्कार किया, उसने अपनी पर्याय में भी आंशिक ऐसी वीतराग-विज्ञानता प्रगट की, वह अपूर्व मंगल है, वह साररूप है।

'सार' अर्थात् मक्खन; जिसप्रकार छाछ को बिलोकर उसमें से साररूप मक्खन निकालते हैं, उसीप्रकार तीन लोक का मनन करके संतों ने उसमें से सार क्या निकाला ?—तो कहते हैं कि—'तीन भुवन में सार वीतराग-विज्ञानता' वीतराग-विज्ञान वह जगत में सारभूत है; इसके अतिरिक्त राग से धर्म मानना, वह तो निःसार पानी को बिलोने जैसा है, उसमें से कहीं सार निकले वैसा नहीं है। ज्ञानियों ने जगत के सर्व तत्त्वों को जानकर उसका मंथन करके उसमें से शुद्ध चैतन्य केवलज्ञानरूपी मक्खन निकालकर उसे सारभूत माना है। अंतरध्यान द्वारा चैतन्य को बिलोकर मुनियों ने वीतराग-विज्ञानरूप सार निकाला है। शेष अन्य बाह्यदृष्टि जीव तो पुण्यरूपी पानी में फँस गये हैं। वे शुभराग में ही संतुष्ट हो गये हैं परंतु राग से रहित ऐसे

वीतराग-विज्ञान को उन्होंने नहीं जाना है। वीतराग-विज्ञान को साररूप जानकर उसका बहुमान करना, वह मंगल है।

आत्मा में से राग-द्वेष दूर हो गये और ज्ञान की पूर्ण दशा प्रगट हुई, वहाँ क्षुधा-तृषा इत्यादि १८ दोष रहित तथा वीतरागतासहित परम आनंदमय केवलज्ञान प्रगट हुआ; वैसा ही केवलज्ञान अपने में प्रगट करने के लिये उसकी प्रतीति करके वंदन तथा आदर करते हैं, अपने आत्मा में उसे प्रगट करते हैं। इसप्रकार सर्वज्ञदेव की प्रतीति तथा बहुमानपूर्वक शास्त्र की प्रारंभिकता होती है।

सच्चा सुख आत्मा में है

भाई, तुझे सुखी होना हो तो अपने ज्ञान में परमात्मा की स्थापना कर, बाह्य विषयों को स्थान न दे। आनंद तो तेरा स्वरूप है, उसमें विषयों की आवश्यकता कहाँ है ? इसलिये तो कहते हैं कि हे जीव ! सुख अंतर में है, उसे बाह्य में न ढूँढ़ ! जगत को संतुष्ट करने में और जगत से संतुष्ट होने में तो जीव ने अनंत काल गँवा दिया, परंतु उसमें किंचित् सुख नहीं है... अंतर्मुख रुचि द्वारा अपने आत्मा को संतुष्ट कर और आत्मा के स्वभाव से तू संतुष्ट हो, तो तुझे सच्चे सुख का अनुभव होगा। संयोग द्वारा संतुष्ट न हो, राग द्वारा संतुष्ट न हो, आनंद का भंडार तुझमें भरा है, उसमें तू संतुष्ट हो, प्रसन्न हो, आनंदित हो।

जिसने चैतन्य का सुख देखा है, वह धर्मात्मा जगत के किसी विषय में लुभाता नहीं है। चैतन्य में भरा हुआ अनंत सुख का भंडार धर्मी को ऐसा लुभाता है कि वह उसी के स्वाद में तल्लीन हो जाता है। अनंत सुख के धाम में जो लुभाया, वह किन्हीं सांसारिक विषयों के लालच में नहीं फँसता। सांसारिक पदार्थों की लालसा उसे छूट गई है और चैतन्यानंद के अनुभव की उत्कृष्ट लालसा (प्रीति) जागृत हुई; उसमें तल्लीन—एकाग्र होकर अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करता है, वही सुखी है।

याद रखने योग्य मंत्र

स्वातम को जाने नहीं, करे पुण्य बस पुण्य।
तदपि भ्रमे संसार में, शिव सुख कभी न होय॥

निज दर्शन बस श्रेष्ठ है, अन्य न किंचित् मान।
हे योगी! शिवहेतु वो, निश्चय से पहचान॥

तब तक एक न जानता, परम पुनीत शुद्ध भाव।
व्रत संयम अरु शील तप, निष्फल सारे जान॥

ज्यों मन विषयों में रमें, त्यों हो आतम लीन।
शीघ्र मिलै निर्वाण पद, धरै न देह नवीन॥

व्यवहारिक धंधों फंसे, करे न आतम ज्ञान।
यही कारण जग जीव ये, पावे नहिं निर्वाण॥

जन्म मरण इकला करे, दु:ख सुख भोगे एक।
नर्क गमन भी एकला, शिव सुख पावे एक॥

पाप रूप को पाप तो, जानत जग सहु कोई।
पुण्यतत्त्व भी पाप है, कहत अनुभवी कोई॥

[योगसार दोहा]

विविध समाचार

सोनगढ़—परमोपकारी पूज्य स्वामीजी आनंद-मंगलरूप सुखशांति में विराजमान हैं। प्रवचन में श्री समयसारजी गाथा १०४ तथा प्रवचनसार में चरणानुयोग चूलिका में से विस्तृत गहरे अध्ययन सहित मोक्षमार्ग का निरूपण जैसा वीतरागी आचार्यों द्वारा निरूपित है, वैसा उपदेश स्वामीजी उत्साहपूर्वक दे रहे हैं।

श्री क्षुल्लकजी दयासागरजी-श्री पूरणसागरजी-श्री पद्मसागरजी, ब्रह्मचारी भंवरलालजी, ब्रह्मचारी नित्यानंदजी अच्छी तरह भाग ले रहे हैं।

सोनगढ़ में परमागम जिनमंदिर का निर्माण होनेवाला है। शिलान्यास-मिती भाद्र शुक्ला २ को है।

❀ ❀ ❀

श्री टोडरमल स्मारक-भवन द्वारा जैन शिक्षण शिविर

जयपुर (राज.)—तारीख १-६-६९ से २० दिन तक विशाल आयोजन द्वारा ८ जगह शिक्षण कक्षायें चलीं। मुख्यवक्ता श्री पंडित खीमचंद जेठालाल सोनगढ़ से पधारे थे; आपके प्रवचन तेरापंथी बड़े मंदिर में होते थे। प्रवचन में सबको बहुत आनंद हुआ। सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय भी बहुत स्पष्टीकरण पूर्वक समझाते थे, लोग बड़ी रुचिपूर्वक लाभ लेते थे।

छात्र अध्यापकों के शिविर में करीब ३० शिक्षक इंदौर, आगरा, एत्मादपुर, इटावा, अशोकनगर, भोपाल, विदिशा, उदयपुर, अलीगढ़, अलवर आदि दूर-दूर से आये थे। कई तो उच्च शिक्षा प्राप्त थे, तथा जयपुर के भी करीब २५ अध्यापक और अध्यापिकाएँ शिक्षण शिविर में सम्मिलित हुए थे। वे सब दोनों समय प्रवचन में भाग लेते थे, छात्रों को पढ़ाते थे तथा स्वयं श्री खीमचंदभाई के पास अध्ययन करते थे। यह शिक्षकगण अनुभव करते थे कि हमने अभी तक का समय व्यर्थ गँवाया। न्याय-युक्तिपूर्वक वस्तु विवेचन सुनकर रुचिपूर्वक समझने का प्रयास करते थे और वे सब लोग दोपहर में श्री खीमचंदभाई के पास चर्चा में आते थे; नि:संकोच अपनी भूलों को स्वीकार करते थे और आनंद प्रगट करते थे। अलग-अलग ८

सेंटरों पर जाकर श्री पाटनीजी, महेन्द्रकुमार सेठी, गोदीकाजी जाँच करते थे। इन सब प्रवृत्तियों में मूल आधार पंडित हुकुमचंदजी होने से उन्होंने सारी व्यवस्था की। विद्यार्थियों की परीक्षा के लिये प्रश्नपत्र बनाना, परीक्षा लेना, उनकी तैयारी और सर्टीफिकेट देना आदि ठोस कार्यक्रम बड़े उत्साह से चला, श्री पूरणचंदजी गोदिका ने इन सब प्रवृत्तियों में बड़े उत्साह से भाग लिया। सब प्रकार के खर्च भोजनादि व्यवस्था तथा शहर में आने जाने का खर्च टोडरमल स्मारक की ओर से हुआ था। —नेमीचंद पाटनी

❀ ❀ ❀

बम्बई—वैशाख मास के समाचारों में कुछ बातें रह गई थीं, जो अब दे रहा हूँ। बम्बई में १७ दिन तक पूज्य स्वामीजी के प्रवचन और श्रोताओं का असाधारण उत्साहमय धर्मप्रेम, अजमेर भजनमंडली का उत्सव के दिनों में भक्तिभरा सुंदर कार्य, प्राचीन चित्रकला प्रदर्शनी जो विदिशा से आयी थी, बम्बई निवासी फोटोग्राफ 'पुनम' द्वारा सुंदर कलामय चित्रों की प्रदर्शनी जिसमें पूज्य स्वामीजी के चिरस्मरणीय मंगल-प्रसंगों का संग्रह होने से सभी को खास आकर्षण था। प्राचीन जैनाचार्यों के शास्त्रों की अति आकर्षक विस्तृत प्रदर्शनी, जिसका आयोजन बम्बई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा हुआ था अत्यंत दर्शनीय थीं।

वैशाख शुक्ला दूजा को परमोपकारी पूज्य स्वामीजी की ८०वीं जयंती रत्नचिंतामणि-महोत्सव के रूप में बहुत आनंद से मनायी गई। इस अवसर पर श्री समयसारजी शास्त्र (गुजराती) की तीसरी आवृत्ति, एवं रत्नचिन्तामणि-महोत्सव ग्रंथ तथा बाहुबली (कोल्हापुर) आश्रम द्वारा प्रकाशित मराठी भाषा में समयसारजी शास्त्र का प्रकाशन हुआ।

❀ ❀ ❀

मलाड तथा घाटकोपर—(उपनगर बम्बई) में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा दो मंजिलवाले विशाल जिनमंदिर बने हैं। मलाड में ऊपर की वेदी में श्री सीमंधरादि २० तीर्थंकरदेवों की मूर्तियाँ स्थापित की हैं। घाटकोपर में २४ तीर्थंकर की तत् तत् वर्ण वाली प्रतिमाजी की स्थापना हुई है।

❀ ❀ ❀

दादर—(उपनगर बम्बई) में श्री कहान नगर सोसायटी में सारे भारत भर में श्रेष्ठ समवसरणजी एवं जिनमंदिर हैं। वहाँ पाँचवीं वर्षगाँठ मनाने के लिये विशाल आयोजन हुआ

था, उस अवसर पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन भी हुआ था।

— जयपुर निवासी श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी ने इन सभी अवसरों पर हमेशा पूज्य स्वामीजी की सेवा में रहकर भक्तिसहित कार्यभार संभाला था। —ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

❀ ❀ ❀

आरोन (म.प्र.) यहाँ ३ जैनमंदिर हैं, एक हजार जैन संख्या है। सोनगढ़ निवासी ब्रह्मचारी रमेशचंदजी हमारे सकल जैन समाज के आमंत्रण से धर्म प्रचार हेतु टेपरील-रेकोर्डिंग सहित पधारे थे। समाज ने २० दिन तक भारी उत्साह सहित लाभ लिया, और तभी से हमारे गाँव में नित्यप्रति दोनों समय शास्त्र-प्रवचन हो रहा है। पंडित श्री प्रकाशचंदजी शास्त्री 'हितैषी' दिल्ली, एवं श्री धन्नालालजी सा. (लश्कर) यहाँ विशेष आमंत्रण से पधारे थे। इन दिनों में धार्मिक शिक्षण कक्षाएँ नियमित चलती थीं। —मोतीलाल कौशल

❀ ❀ ❀

मौ (भिण्ड-म.प्र.)—यहाँ ब्रह्मचारी हेमराजजी सा. जो श्री कानजीस्वामी के सानिध्य में रहे हुए हैं आपके उपदेश से स्थानीय जैन समाज ने बारह हजार रुपये दान देकर स्वाध्याय-भवन के निर्माण कार्य का प्रारंभ कर दिया है, स्वाध्याय एवं शास्त्रसभा कार्यक्रम नियमित चल रहा है। —शांतिकुमार जैन मंत्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, मौ

❀ ❀ ❀

राघौगढ़-इंदौर (म.प्र.) में २० दिन के जैन शिक्षण शिविर की समाप्ति के पश्चात् हमारे अनुरोध से श्री नेमीचंदजी (रखियाल निवासी) पधारे थे, दस दिन तक मोक्षमार्गप्रकाशक पर स्वाध्याय तथा जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला आदि पढ़ाया; आपके प्रवचनों से धर्मप्रभावना का अच्छा योग बना है, विरोध करते थे, वह विरोध मिटाकर सहयोगी बन रहे हैं। आप यहाँ से गुना पधारे-आगरा जावेंगे। —सुशीलकुमार

❀ ❀ ❀

महीदपुर (म.प्र.)—सोनगढ़वाले श्री चिमनभाई ने इंदौर जैन शिक्षण शिविर के पश्चात् तारीख २० से ३०-६-६९ तक हमारे अनुरोधवश यहाँ आकर धार्मिक उत्साह बढ़ाया;

हमेशा तीन बार प्रवचन-शिक्षणवर्ग हृदयग्राहीरूप में चलाया, समाज ने भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं लाभ उठाया। — शांतिलाल सोगानी

❀ ❀ ❀

इंदौर में ग्रीष्मकालीन शिक्षण-शिविर एवं आध्यात्मिक प्रवचन

गत मई महीने में इंदौर मुमुक्षु मंडल द्वारा धार्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया था। जिसमें सोनगढ़ निवासी श्री पंडित चिमनभाई, रखियाल निवासी श्री पंडित नेमीचंदजी तथा श्री बाबूभाई नाथालाल फतेपुरवालों ने आकर विद्यार्थियों को धार्मिक शिक्षा दी थी। इसी बीच इंदौर में 'कर्फ्यू' लग जाने से यद्यपि कार्यक्रम व्यवस्थित रूप से न चल सका, तथापि जब 'कर्फ्यू' खुलता था, तब सैकड़ों विद्यार्थी एवं मुमुक्षु स्त्री-पुरुश उपस्थित रहते थे। उन्हीं दिनों में प्रसिद्ध विद्वान एवं प्रवचनकार श्री पंडित हिम्मतलाल छोटालाल बम्बई ने लगातार पन्द्रह दिन तक स्थानीय क्लाथ मार्केट एवं रामाशाहजी दिगम्बर जैन मंदिर में अपने आध्यात्मिक-प्रवचनों द्वारा लोगों में अच्छी धर्म-जागृति पैदा की। पश्चात् आठ दिन के लिये सोनगढ़ के प्रसिद्ध विद्वान एवं आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री पंडित खीमचंद जेठालाल सेठ पधारे और प्रतिदिन प्रातः-सायं रामाशाहजी के मंदिर में आपके आध्यात्मिक-प्रवचन प्रारंभ हुए, जिनमें हजारों की संख्या में उपस्थित रहकर लोगों ने अध्यात्मरस का पान किया। उपरोक्त शिक्षकों एवं विद्वानों का इंदौर दिगम्बर जैन समाज ने हार्दिक स्वागत किया एवं बारंबार इंदौर पधारकर लाभान्वित करने का निवेदन किया। वास्तव में इन दिनों कर्फ्यू तथा दफा १४४ लागू होने पर भी धार्मिक वातावरण छाया हुआ था, और लोग उत्साहपूर्वक प्रत्येक कार्यक्रम में भाग लेते थे। —मगनलाल जैन

[इंदौर के विस्तृत समाचार विलंब से आने के कारण अगले अंक में दिये जायेंगे।]

ज्ञान बिना शिव ना लहै.....

अहो, ऐसा अनुपम आत्मस्वरूप अंतरघट में ही शोभायमान है कि जिसके स्मरण और जाप-ध्यान से भव-भव के दुःख मिट जाते हैं।

केवलज्ञान और केवलदर्शन में स्थिरतारूप से जो पद सुशोभित है और जिसकी उपमा के योग्य कोई वस्तु तीन लोक में नहीं है, ऐसा अनुपम पद हे जीव! तेरे घट में विराजमान है।

भले ही परीषहों का भार सहन करे और महाव्रत पाले, परंतु आत्मज्ञान के बिना जीव मोक्ष प्राप्त नहीं करता और अनेक कर्मों का उपार्जन करता है।

ऐसे आत्मस्वरूप को जाने बिना तीन काल-तीन लोक में मोक्ष का कोई और इलाज नहीं है; इसलिये कवि अपने को संबोधन करके कहते हैं कि—हे द्यानत! अपने स्वार्थ के लिये अर्थात् आत्महित के लिये तू ऐसे आत्मस्वरूप को जान...

उपरोक्त अर्थवाले अध्यात्मपद की रचना पंडित श्री द्यानतरायजी ने की है जो यहाँ दिया जा रहा है—

आतम रूप अनूपम है घट मांहि विराजै।
जाके सुमरन जाप सों, भव भव दुख भाजै हो॥ आतम० ॥१॥

केवल दरशन ज्ञान मैं, थिरता पद छाजै हो।
उपमा को तिहुंलोक में कोऊ वस्तु न राजै हो॥ आतम० ॥२॥

सहै परीषह भार जो, जु महाव्रत साजै हो।
ज्ञान बिना शिव ना लहै, बहु कर्म उपाजै हो॥ आतम० ॥३॥

तिहूँ लोक तिहुं काल में नहि और इलाजै हो।
'द्यानत' ताको जानिये, निज स्वारथ काजै हो॥ आतम० ॥४॥

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	" " " भाग-२	१.००
	" " " भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२०	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
	पाँच पुस्तकों का कुल मूल्य	२.६०
२६	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२७	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२८	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)